HINDI PRADEEP 1908

REGD. No. A. 308.

# हिन्दी प्रदीप

## मासिक पत्र ।

शुभ सरस देश सनेह पूरित प्रगट है आनन्द भरै ।
बचि दुसह दुरजन वायु सों मणिदीप समथिर नहिंटरै ॥
सूझै विवेक विचार उन्नति कुमति सब यामे जरै ।
हिन्दी प्रदीप प्रकाशि मूरखतादि भारत तम हरै ॥

जिल्द ३० } जनवरी १९०८ { संख्या १

## विषय सूची ।



पण्डित बालकृष्ण भट्ट सम्पादक और प्रकाशक के
आज्ञानुसार पं० शीतलप्रसाद त्रिपाठी ... न इरादे का ...
(३।=)

रहे। ... के अनुरोध से जिनके हम अत्यन्त
... धित हैं ... स्तकालय और ... ठाकुर गदाधर सिंह के जिनकी बार २
प्रेरणा से ... पिछले ... स साहस से प्रवृत्त हुये हैं। अब इसमें हमारा

# हिन्दी प्रदीप

जिल्द ३० } जनवरी सन् १९०८ ई० { सं० १

## नूतन वर्ष का नूतन संविधान ।

नये साल की इस नई सजावट के बारे में हम गये अंक के जुबिली शीर्षक लेख में सूचना दे चुके हैं। ईश्वर की कृपा से आज हमें वह सुभ अवसर प्राप्त हुआ । अपने प्रेमीमित्रों की प्रेरणा से प्रदीप को वृहत् आकार में प्रगट कर रसिक पाठकों को अर्पण करते हैं और उनसे सादर विनय करते हैं कि वे अपने स्नेह से इसे स्नेह ( तैल ) पूर्ण करते रहें । क्योंकि जब इसका आकार बड़ा हो गया तो इसमें स्नेह भी अधिक समायगा यह मत समझिये कि आकार बढ़ जाने से प्रदीप का अब वह प्रकाश न रहेगा जैसा २९ वर्ष तक रहा अब इसमें भरती बहुत रहैगी । चित्त को आकर्षण करने वाले लेख न रहा करेंगे। प्रिय पाठक ऐसा कभी मन में न लाना इसमें स्नेह ( तेल ) छोड़ना तो आप का काम है पर इसे चित्ताकर्षक बनाये रखना मेरे ज़िम्मे है । यद्यपि चिरकाल से हम इसी चिन्ता में थे कि किसी तरह प्रदीप की कुछ उन्नति करैं किन्तु असहाय हो इसे अपनी शक्ति के बाहर समझ अपने इरादे को मुलतबी किये रहे । पर कई एक हार्दिक्य मित्रों के अनुरोध से जिनके हम अत्यन्त बाधित हैं विशेष कर पुरुष रत्न ठाकुर गदाधर सिंह के जिनकी बार २ प्रेरणा से प्रेरित हो हम इस साहस में प्रवृत्त हुये हैं। अब इसमें हमारा

सफलोद्यम होना प्रेमी पाठकों के आधीन है। हमारी मौत ज़िन्दगी तरक्क़ी या तनज्जुली के कर्ता धर्ता विधाता ग्राहक समूह हैं इससे उन्हीं से विनती है कि हमें संभाले रहें बल्कि जो त्रुटि हो उसे सूचित करें हम उसे दूर हटावें और इसकी भविष्य की भलाई का सोपान तैयार करते जायं।

---

## राजा और प्रजा।

सेव्य सेवक मालिक और नौकर तथा पति और पत्नी का सा सम्बन्ध राजा और प्रजा का है। प्रगाढ़ भक्ति के साथ सेवक जो अपने सेव्य की सेवा मन बच कर्म से करता है तो सेव्य उससे सन्तुष्ट हो, उस की सकल कामना पुरै देता है। ऐसा ही उदार कदरदां मालिक खैरख़्वाह चाकर की चाकरी से राज़ी हो कृपा दृष्टि की वृष्टि करते उसकी ओर एक बार चितै देते ही समस्त संपत्ति का भंडार उसे बना देता है। इसी के विरुद्ध चालाक चालबाज़ ख़ुदगर्ज़ मालिक शुद्ध भाव चाकर की चाकरी का मन से कायल होकर भी अपनी चालाकी से नहीं चूकता। सेवक की सिधाई और उसके अनेक उत्तम गुणों की सराहना अपने फुटहे मुख से न कर उसमें दोष ही दोष देखने को सदा दिव्य दृष्टि रहता है। इस लिये कि ख़ुदगरज़ी का पुतला स्वार्थान्ध वह स्वामी जो अपने सेवक की सिफ़तों को क़बूल कर लेता है तो उसे कायल हो जाना पड़ता है और अपने बराबर वालों में उसकी नौधरी होती है। ऐसा ही शुद्ध भाव से पति की सेवा करने वाली पति प्राणा पत्नी पति चाहो कैसा ऐगुणी कुरूप और कड़ाई करने वाला हो पर वह साध्वी मन बच क्रम से उसकी सेवा टहल से मुख नहीं मोड़ती। जहां राजा और प्रजा दोनों अपना २ काम भरपूर समझते हैं और अपना २ काम कर रहे हैं वहां का भला क्या कहना **"रमन्ते सर्व संपदः"** विचार तो इस समय वहां का किया जाता है जहां प्रजा सिधाई के साथ अपना काम कर रही है पर वह मुष्टि मालिक के समान राजा अपनी चालाकी की चाल से नहीं चूकता। सब तरह अपना स्वार्थ साधता है

और प्रजा का प्राण सम धन बटोरे लेता है "एकस्य क्षणिका प्रीति रन्यः प्राणैर्विपुज्यते" प्रजा तो यहां तक क्षीण धन हो गई है कि अकाल की कौन कहे सस्ती में भी अधिकांश लोग एक जून खा कर रहते हैं पर राजा के वर्ग वाले प्रजा के धन से गुलछर्रें उड़ा रहे हैं और प्रजा वर्ग को अशिष्ट असभ्य अर्द्धशिक्षित और मूर्ख बना रहे हैं। उनकी आगे बढ़ने की चेष्टा पर हँस रहे हैं करावलम्ब देना तो एक ओर रहा उन्हें हतोत्साह किया चाहते हैं। जब कभी किसी बात में बहुत कहने सुनने से करावलम्ब भी देते हैं तो वह चाल के साथ चतुराई से खाली नहीं रहता। उस करावलम्ब में भी निज का कुछ न कुछ फ़ाइदा रहता ही है। बद्ध मुष्टि तो यहां तक कि सरकारी कोई महक़मा नहीं है जिसमें उस महक़मे के ख़र्च अदा कर फाइदा न रहे। पहले के बादशाह लोग ऐसी बात करते थे जिसमें उनके खज़ाने का रुपया प्रजा में फैले अब शासन के काम में यहां तक बनियई देखी जाती है कि बहुत ही छोटे फ़ाइदे पर सरकार की नज़र रहती है। जैसा पहिले चिट्ठी का टिकट बेचने वाले को आध आना या एक पैसा रुपया कमिशन दिया जाता था दो चार जगह बड़े शहरों में टिकट लिफ़ाफ़ा और कार्ड मिलते थे अब उठा दिया गया केवल शहर के डाकख़ानों में टिकट मिल सक्ता है। मान लो साल में दो चार हज़ार रुपये का फ़ाइदा सरकार को इससे हुआ होगा पर लोगों को तकलीफ़ और तरद्दुद कितना इसमें हुआ कि एक पैसे का कार्ड लेना हो तो आध मील चल कर पोस्टआफ़िस में आओ तब टिकट मिले। फिर बहुधा हर जून वहां इतनी भीड़ रहती है कि रेलवे स्टेशन का टिकट घर इसके सामने मात है। जब राजा को यहां तक निज लाभ पर दृष्टि है तब प्रजा निष्किंचन न होने से कहां तक बच सक्ती है। स्वदेशी की तरक्की देख सरकार को यहां के मज़दूरों और कुलियों पर दया आई है। फ़ेक्टरी कमिशन निकाला गया है जहां २ कपड़े आदि की मिलें हैं वहां २ यह कमिशन जाय कुलियों का हाल दरियाफ़्त करेगी और कोई ऐसा ऐक्ट पास कर देगी कि यहां के माल से विलाइत का माल सस्ता पड़े और

इस कमिशन में जो खर्च होगा वह इण्डिया गवर्मेंट के माथे अवश्य ही पढ़ेगा। सरकार हम लोगों में "प्रइमरी" और "टेक्निकल इज्युकेशन" प्राथमिक तथा शिल्प-शिक्षा का प्रचार किया चाहती है गवर्मेंट का यह प्रस्ताव सर्वथा सराहने लायक़ है किन्तु तब जब कि इससे हमारी उत्तम शिक्षा में बाधा न आवे। यदि बढ़ई लुहार का काम सिख हमारी उत्तम शिक्षा में हानि आई और उच्च शिक्षा की ओर गवर्मेंट मन्दादर हो गई तो इस प्राथमिक और शिल्प शिक्षा को नमस्कार है। गवर्मेंट की हर एक बातों में ऐसा ही देखा गया है कि जिस रास्ता पर हम नहीं गये उस ओर हमे ले जाती है पर जब हम अपनी दिमाग़ी कूवत से उसमें पारङ्गत हो पैरने लगते हैं तब उसमें हमे रोकने की फ़िकिर में लगती है। कोई समय था जब हम सर्वथा पश्चिमी शिक्षा से अनभिज्ञ थे तब हमारे में शिक्षा का प्रचार किया गया अब हम जब उसमें निपुण हो उनकी नीति का मर्म जानने लगे तो अब उत्तम शिक्षा देने में संकोच होने लगा। सरकार की गूढ़ नीति का जो कुछ भीतरी मतलब हो पर इतना अवश्य कहा जायगा कि प्रजा को राजा की ओर से छनक अवश्य हो गई और वह छनक रोज़ २ बढ़ती जाती है। इसी से हम कहते हैं राजा और प्रजा में प्रेम भाव उठता जाता है। प्रजा का प्रेम तो है पर राजा में चाल और स्वार्थ उस प्रेम को घटाने को घुन सा लगता जाता है। राज चिरस्थायी होने के लिये इस घुन को हटाने में ही कल्याण है।

रशियन्, फ्रेंच, ज़रमन् आदि यूरोप की और २ जातियों के सामने इण्डियागवर्मेंट बड़े अभिमान के साथ कहती है कि हिन्दुस्तान में हमारा शासन बड़ा उदार शासन है। किन्तु अन्य जाति वाले इस उदारता का मर्म क्या जानैं। राजा का तो क्या प्रजा का भाव राजा की ओर निस्सन्देह उदार है। यहां के थोड़े से पढ़े लिखों को छोड़ साधारण लोग राजशासन Palitics में इतना अनभिज्ञ हैं कि राजनैतिक एंच पेंच कुछ समझते ही नहीं। धर्म शास्त्रों में जैसा राजा का मान लिखा है वैसा ही बर्तते हैं। विदेशी राजा है या स्वदेशी इसकी बिल्कुल निर्ख न कर सरल अकुटिल भाव से राजा की आज्ञा मानने में उद्यत हैं। कितने तो ऐसे भी हैं कि

गुलामी में पड़े२ मुल्की जोश उनमें इतना बुझ गया है कि सर्वथा निराश हो कह रहे हैं। "कोउ नृप होहिं हमैं का हानी। चेरी छोड़ न होउब रानी"। इस दशा में गवर्नमेंट अपने उदार शासन का जितना घमण्ड करै सुन लेना पड़ता है। इस उदार शासन ही की पोल खोलने के बदौलत आज दिन कई एक सम्पादक जेल का क्लेश झेल रहे हैं। हमारी गवर्नमेंट पर ईश्वर सानुकूल है सब भांत उसका सितारा चमक रहा है। भाग्यवश ऐसे लोग शासन के लिए मिल गये हैं कि इस हालत में जो कुछ ये कहैं सब सोहता है। पुराने क्रम के लोगों में राजनैतिक जोश का आना एक ओर रहे डरपोक इतने हैं कि उनका कथन है **"राजसेवा मनुष्याणा मसि धारावलेहनम्। पंचानन परिष्वंगो व्यालोवदन चुम्बनम्"** मनुष्यों के लिए राजसेवा तलवार की धार को चाटना है। शेर के साथ कुश्ती लड़ना है और नागिन के मुख को चुंबना है। ऐसे ही ऐसे खयालों ने देश को इस दशा में ढकेल दिया अब जो उनको चिताने की फ़िकिर की जाती है तो वह विद्रोह में दाखिल किया जाता है। क्या कहना उदार भाव का अन्त है एक ओर चालाकी और चतुराई का छोर है। दूसरी तरफ़ सिधाई और गावदीपन का खातिमा है। इस दशा में भारत दलित हो दिन दीन दीन होता गया तो कौन सा ताअज्जुब है।

---

# मेघदूत और नरम गरम सन्देश।

## ( लेखक एक इम्पीरियलिस्ट )

धूम ज्योतिः सलिल मरुतां सन्निपातः क मेघः।
सन्देशार्थाः क्वपटु करणैः प्राणिभिः प्रापणीयाः।
इत्यौत्सुक्यादपरिगणयन् गुह्यकस्तं ययाचे।
कामार्त्ताहि प्रकृति कृपणाश्चेतना चेतनेषु॥ (मेघदूत)

कहां धूम, तेज, जल, वायु, का समूह मेघ और कहां ज्ञानेन्द्रियों संयुक्त मनुष्यों के सन्देश! ऐसे साधारण विवेक से भी शून्य, किसी

कार्य्य की कामना रखने वाला व्यक्ति अपने सन्देश पहुंचाने के लिए जड़ मेघों से याचना करता है।

महाशय गण! क्या यह विड़म्बना नहीं है? जान पड़ता है कि कवि कालिदास ने इस उक्ति की कल्पना हमारी आज की स्थिति के विषय चितौनी के लिए की थी। सच कहा है। कोई कामना रखने वाला मनुष्य अपने बात की काट छांट में जड़ चेतन के विवेक से भी रहित हो जाता है।

यह बात कुछ बनावटी नहीं है। प्राकृत अर्थात् स्वाभाविक ही होती है। आज से नहीं—जब से बाबा आदम की औलाद संसार में है तभी से यह बात देखी और जानी मानी हुई है॥

फिर जो हम आज अपनी आवाज़ उसी अकाश के मेघों द्वारा लंडन स्थित मालिकों तक पहुंचाने की कोशिश करते हैं। हां कह लीजिये कि आकाश कमल की ही कामना करते हैं। तो हमें दोष क्यों दिया जावे?

हम अपने साधारण विवेक-मेघदूत के यक्ष समान जड़ चेतन विवेक-को खोडालें तौभी तो हम उक्त कवि के कथनानुसार प्रकृतिस्थ ही हैं? अर्थात् अपने स्वभाव के अनुकूल ही कर रहे हैं।

हम ग़रीब हिन्दुस्तानी प्रजा के प्रतिनिधियों में आज नरम और गरम दो दल हो गये हैं, हम प्रजागणां की समक्ष में तो दोनों हो दल हम मरभुखों को भर पेट अन्न दिलाने की एक सी ही दलालत करते हैं।

नरम प्रतिनिधि हमारी सनातन नरमाई को जानते हुए, हमारी निर्बलता; निःसहायता, और निरावलम्बिता को देखते हुए—हां हां! हमारी मरी कङ्काल को अपने आगे धरी हुई देख दुःख के कारण विवेक को भुला कर भी, हमारी कामना, वही उदरम्भरी कामना को आकाश में प्रतिध्वनित करके शारदीय मेघों द्वारा हमारे मालिकों के मकान (Home) तक पहुंचाने की कोशिश करते हैं। जिससे उनके दिल में दया का सञ्चार हो और ये मरी कङ्कालें फिर से मानुषी संसार में मनुष्यों के बीच जगह पावें।

और दूसरी तरफ गरम महाशय गण संसार भर की ऊंच नीच अवस्था और उतार चढ़ाव को सामने धर विवेक दृष्टि से देखते हुए—हां ! उसी तरह की दूसरी जातियों के पतन और उत्थान का नमूना लेकर ही हमारी मरी कङ्कालों के पावों में पट्टी बांध गरमाई पहुंचा कर— खड़ा करने का उद्योग करते हैं। और हाथ में लकुटियां थमा कर मेहनत मज़दूरी करके पेट भरने की सलाह देते हैं।

महाशय गण ! अपही बतावें, हमारे लिए इन दलों में से कौन विशेष श्रद्धेय और प्रेय है ?

गुरु गोविन्द दोनों खड़े, केहिके लागौं पांय।
बलिहारी उन गुरुन की, गोविन्द दियौ लखाय॥

प्रसिद्ध राजनीतिज्ञ वेब (Alfred Webb) साहब कहते हैं—

Subject peoples are abnormally sensitive to the feeling towards them of their rulers.

राजा जाति की की हुई निन्दा स्तुति से पराधीन जाति के चरित्र में सहज ही परिवर्तन हो जाता है।

यह बात हमारी निज ऐतिहासिक भी है।

कर्ण को बल हीन करने के लिए शल्य ने उसकी बड़ी निन्दा की थी और अभीष्ट परिणाम भी पाया था।

हम अपने देश को कृषि प्रधान और अपने को कृषक कहते कहते अपना सभी उद्योग, धंधा, बनिज, व्यौपार, कारीगरी और सिपाहगीरी को खोकर कोरे किसान—किसान से भी गये बीते—खेतों की गिरी पड़ी कणिकायें चुंगने वाले केवल कणाद बन गये।

अतएव अपनी दीनता और हीनता के सन्देशों से आकाश को गुंजायमान करने और अपने कलरव से राजा के अमन चैन में बाधा डालने की अपेक्षा क्या यह उचित कर्तव्य न होगा कि बहुत लोग अपने मालिकों की बात को मान कर स्वयमेव अपनी मेहनत मजूरी में लग जायं। गैरों को अपनी मजूरी में न लगावें न लगाने दें। और भर पेट अन्न अपने आप पैदा करके स्वयम् सुखी और मालिकों को भी प्रसन्न करें?

हमारे महामान्य महाहितैषी भूतपूर्व बड़े लाट कर्ज़न साहब भी यही कह गये हैं कि :—

No nation can be truly great unless it patronises its own arts and tetters.

कोई जाति महत्व को नहीं प्राप्त कर सकती जब तक कि वह अपनी कारीगरी और अपनी निज भाषा का पूरा २ आदर नहीं करती।

सोभाई ! हमारे प्रति-निधि-गण चाहे जैसी दलीलें देवें। दल चाहे कितने ही बनजायं, मत और मतान्तर चाहे कितने ही क्यों न उठें बैठें। रोम वाली रास्ताओं की भांति, तथा सब देवों की पूजा केशव भगवान् के प्रति चली जाने की तरह, याचना, कामना, अभीष्ट, उद्देश्य, और आवश्यकता महा पुरुष कारलाइल के शब्दों में केवल वही है, जो अत्र, तत्र, सर्वत्र, मनुष्य जाति के लिए एकसा है। वह यह है कि :—

Work and wages, the two prime necessities.

"काम" और "दाम" मनुष्य के लिये यही दो आदमी की जरूरत हैं। इन्हीं दोनों के मिलने से उसका जीवन, कम मिलने से संकट और न मिलने से मरण समझना चाहिये।

# ( फूट )

## बसन्त तिलका छन्द ॥

रे फूट ! ऐक्य, जनप्रेम, विनाशकारी।
हिन्दुन् निरन्तर महादुख देन हारी ॥
विद्या सुबुद्धि तोहिं देखत दूर भाजैं।
होती जबै मनुज बीच कृपा तिहारी ॥ १ ॥
जो थी सुनी प्रथम सूर्पनखा पिशाची।
औ ताड़कादि त्रिजटा दूढ़ पूतना सी ॥
सो तोहि देखि सति आवत है हमारी।
वे थीं निदान जिमि दासिनियां तिहारी ॥ २ ॥

जो काज को पुरुष वर्षन में सुधारै ।
सो तू बिना कठिनता छिन में बिगारै ॥
अत्यन्त युद्ध करवाय सभा विदारै ।
लै आपनो दल समेत जहां पधारै ॥ ३ ॥
तू दृष्टि में अधिक इन्द्रहु ते बढ़ी है ।
औ वेग में अति समीरहु ते चढ़ी है ॥
तेरो प्रभाव लखि ठौर न वेउ आवैं ।
जे स्वर्गवास करि दैत्य रिपू कहावैं ॥ ४ ॥
तू सापिनी–सुमति–प्रेम–विनासिनी है ।
औ भारतीय जन–रक्त–पिपासिनी है ॥
प्रत्येक मानव हिये बिच बास तेरा ।
कोई न ठौर जहं होत न तोर फेरा ॥ ५ ॥
प्राचीन काल जब कौरव पाण्डवों की ।
विख्यात नीति, महिमा, अरु वीरता, थी ॥
तू जाय कै तिनहिं बीच अरी कुठारा ! ।
दोनों लड़ाय बहवायसि रक्त धारा ॥ ६ ॥
है बीच की अवहिं बात नहीं पुरानी ।
श्री पृथ्वीराज जयचंद विषै कहानी ॥
वासे बिनास अति हिन्दुन को करायो ।
औ राज्य छीन परदेसिन को दिवायो ॥ ७ ॥
बाईस वर्ष जेहिं भारत के हितैषी ।
कीन्हीं सभा विरचि "कांग्रेस" रूप जैसी ।
तेईसवीं वरस आज न तोहिं भायो ।
विद्रोह आपस कराय विसे नसायो ॥ ८ ॥
ऐसे कितेक तब कारज हैं नसाए ।
जो आजलौं बहुरि कै बन नाहिं पाए ॥
रे घोर पापिनि ! हिये तव नाहिं दाया ।
होती अहो ! कबहुं नासि न तोर काया ॥ ९ ॥

हे! आर्य बंधु! तुम संकट में पगे हौ।
निःसार त्यागि सुख नींद अवै जगे हौ॥
तासे अहै प्रथम काज यहै तुम्हारो।
लै ऐक्य खड्ग "यह पापिन" को संहारो॥

---

# उन्नति का प्रथम मार्ग

## हिन्दी की उन्नति।

### सोरठा,

तम न होयगो दूर, विन "एक भाषा" रवि उगे।।
सुगम भाव भरपूर, "हिन्दी" तासे उचित है॥ १॥
हे! हिन्दू सन्तान, निज उन्नति यदि चहत हौ॥
तो सब मिल करिध्यान, हिन्दी की उन्नति करहु॥ २॥
जन्म्यो हिन्दुस्तान, "हिन्दू" जाति कहाय कै॥
दियो न हिन्दीमान, तौ धिक् ऐसी जाति को॥ ३॥
सकल देश की जाति, जे निज उन्नति चहत हैं।
मुख्य धर्म सबभांति, निज भाषा उन्नति करन॥ ४॥
तासे करत सचेत, आर्य जाति के नवयुवक।
देश सुधारन हेत, करहु जतन चूकौ नहीं॥ ५॥
हिन्दी केर प्रचार, घर घर होवै देश में।
अरु अपनो व्यापार, करहु सफल तजि दासता॥ ६॥
विषय अनेक न काहि, ढूढ़ि अनेकन ग्रंथ सों।
करि तिन हिन्दी माहिं, सचरावहु निज देश में॥ ७॥
विविध शिल्प विज्ञान, काव्य कला अरु धर्म युत।
सिखवहु निज सन्तान, हिन्दी सरल बनाय कै॥ ८॥
अरु सुविमल इतिहास, गौरव युत निज देश को।
पढ़तहि होत विकास, विनसै माया जाल तम॥ ९॥

तजहु ईर्षा द्वेष, नशा पान आलस कुसंग ।
बंधुन प्रेम विशेष, करहु कपट तजि हिये की ॥ १० ॥
सोचहु टुक धरि ध्यान, विगत दशा निज देश की ।
वही आर्य सन्तान, पै अब क्यों गत ह्वै रहे ॥ ११ ॥
प्यारे बंधु समाज !, एक एक तजि दियेते ।
नष्ट देश तब आज, और न दूजो हेतु कछु ॥ १२ ॥
दशा यदपि अति हीन, बहु बिधि तुमरे देश की ।
धन, अन, बुद्धि, विहीन, बने सबहि बिध दास हैं ॥ १३ ॥
तदपि करहु नहि सोच, समय फेरते होत सब ।
बिना कछू संकोच, निज कर्तव्य लग जाहु अब ॥ १४ ॥
तुम्ही एक अवलम्ब, निज गन भारत देश को ।
ताते न कर विलम्ब, अपनो धर्म निबाहिये ॥ १५ ॥

माधव शुक्ल

---

## हमारा दास्य भाव ।

इतिहासों से पता लगता है कि असभ्य से असभ्य जाति भी गुलामी के बन्धन से छुट तरक्की और सभ्यता की चरम सीमा को पहुंच गई हैं । हमने अपने पहले के वैदिक ऋषियों के क्रम को छोड़ने के साथ ही दास्य भाव को ऐसा गहके पकड़ रक्खा है कि उससे अपना छुटकार करना चाहते ही नहीं—जहां का धर्म दास्य भाव सिखाता है उस जाति की गुलामी का भला क्या कहना ? कोई भक्त प्रगाढ़ भक्ति के उद्‌गार में भर अपने सेव्य प्रभु से कहता है "त्वद्‌ भृत्यभृत्यपरिचारकभृत्य-भृत्यभृत्यस्य भृत्य इति मां स्मर लोकनाथ" हे प्रभो लोकनाथ ! आप अपने दास का दास का दास का दास समझ मुझे याद रखिये । नीचे ही ताक रहा है ऊपर को शिर उठाने का मन ही नहीं करता । इसमें सन्देह नहीं ऐसे भक्त जनों का चित्त बड़ाही विमल कोमल सरल और उदार रहा । उन्हें महात्मा और सत्पुरुष मान समाज उनके

पीछे दौड़ी और उनका अनुसरण करने लगी। पर चित्त-वृत्ति उन भक्त जनों की कैसी कोमल सरल और अकुटिल थी सो तो ला न सके दास बनने की बाहरी बात अपने में आरोपित कर दासोस्मि दासोस्मि कहने लगे। कहने क्या लगे जन्म जन्म के दास और गुलाम दर गुलाम हो ही गये। तब इनके यावत् क्रम जितनी बात सब गुलामों की सी हो गई। जिनमें गुलामी की दुर्गन्धि की दूर ही से ऐसी भभक उड़ती है कि सैकड़ों वर्ष तक सभ्यता के गुलाब और केवड़े का इत्र भी अपना असर वहां पहुंचा उसे सुगन्धित नहीं कर सकता। न उस बदबू को दूर कर सकता है। काम तो हमारे दास्य भाव के हई हैं नाम से तो गुलाम न बनते सो हम लोगों में अधिकांश नाम रामदास भगवानदास ऐसे करीह और कटु लगते हैं कि सुनते ही घिन पैदा हो जाती है। मनु ने शर्मा वर्मा और गुप्त ये तीन उपाधियां द्विज अर्थात् ब्राह्मण क्षत्रिय और वैश्य के लिये रक्खी हैं। शर्म माने सुख के हैं ब्राह्मण अपने ब्राह्मणत्व के उज्वल संस्कार अनुसार उज्वल कर्म करता हुआ सबों को सुख पहुंचाता रहे। इसी तरह वर्मा के अर्थ रक्षा के हैं क्षत्रिय अपने बल वीर्य से सबों की रक्षा करे। ऐसा ही गुप्त के अर्थ भी रक्षा या छिपाना है। वैश्य हर तरह बनिज व्यौपार कर प्रजा का धन बचाता और बढ़ाता रहे। उसी के अनुसार नाम भी इन तीनों के ऐसे होने चाहिये जिनसे उन २ अर्थों का बोध हो न कि सब के सब दास बन बैठे। कहने मात्र को द्विज रहे वास्तव में काम और नाम दोनों से सब के सब शूद्र क्या वलिक उससे भी बत्तर हैं।

बुद्धिमानोंने उपाय और अपाय दो बात निश्चय किया है। "उपायांश्चिन्तयेत्प्राज्ञस्तथा पायांश्च चिन्तयेत्" किसी वस्तु की प्राप्ति के लिये उपाय करे और उपाय में कृत कार्य होने पर जो अपाय विघ्न रूप दूसरी बात उठखड़ी हो उसके हटाने की भी ततबीर सोच रक्खे। भक्ति मार्ग वालों ने चित्त को विमल और कोमल रखने को सुगम उपाय नवधा भक्ति बहुत अच्छा सोचा पर उसके साथ ही हमारी अज्ञानता कितनी बढ़ैगी सो बिलकुल न सोचा। उसी अज्ञानता का परिणाम

हमारे कौमी जोश पर जा टूटैगा इसका कहीं शानगुमान भी उन्हें न रहा । अस्तु जाय बहे कौमी जोश और देशानुराग चित्त का बिमल और शुद्ध होना ही क्या कम बरकत है सो इस समय के कोरे मूर्ख कुन्दे नातराश भक्तों में वह भी नहीं पाया जाता । जड़ प्रतिमा में तो बड़ा ही भाव भक्ति और प्रेम प्रगट करैंगे पर सजीव अपने किसी दुखी भाई को देख पिघल उठना एक ओर रहा निठुराई के साथ उसको हानि पहुंचाने से न चूकैंगे । क्या यही उनके भक्ति मार्ग का तत्व है ? इस भक्तिने जैसा दास्य भाव को पुष्ठ कर रक्खा है वैसा और ने नहीं । भक्ति के साथ वीररस मिला रहता तो कभी इससे हानि न पहुंचती किन्तु भक्तिमार्ग का प्रादुर्भाव तब हुआ जब देश में सब ओर मुसलमानो की हुकूमत अच्छी तरह जम गई थी और आर्य जाति अपनी वीरता से च्युत हो चुकी थी । मुसलमानो का संपर्क पाय उनकी सी भोग लिप्सा इनके मन में स्थान पा चुकी थी । परिणाम में भक्ति के साथ शृंगार रस मिल गया । शृङ्गार में सनी इसी भक्ति ने योगिराज हमारे श्रीकृष्ण भगवान् को अत्यन्त विलासी और रहस्य प्रिय बना दिया । नहीं तो कैसे सम्भव था कि जिन्हों ने गीता का ज्ञान कहा था जिनकी राजनैतिक काटव्योंत ने महाभारत का युद्ध कराय बड़े२ महारथी बीर बांकुरे राजाओं को युद्ध में कटवाय भारत भूमि निर्वीर्य करवा डाला वह ऐसे भोग गिलासी होते। शृङ्गार और बीर दोनों विरोधी रस हैं एक ही ठौर दोनो नहीं ठहर सक्ते । महाभारत के युद्ध के उपरान्त बुद्धदेव ने अहिंसा परमोधर्मः की शिक्षा से दया विस्तार कर बीरता की जड़ पर कुल्हाड़ा चलाया पीछे भक्ति के साथ शृंगार रस मिल प्रजा को आशिकतन भोग लिप्सू करडाला । बड़े २ राजा भी भक्त बन बैठे । महाभारत के समय का युद्धोत्साह और रण भूमि का प्यार न रहा तो बाहरी शत्रुओं से लड़ता कौन ? परस्पर की स्पर्द्धा और फूट का अंकुर महाभारत ही के समय से जम चुका था जैचन्द्र और पृथ्वीराज के समय वही फूट का बीज वृक्ष के रूप में परिणत हो फलों से लद गया । उधर क्षत्रियों के बीच से बीरता डेरा डंडा उठाय बिदा हुई इधर ब्राह्मण तपः स्वाध्याय सन्तोष संपत्ति

को विसर्जन कर लालची बन वैदिक ऋषियों की आप्तता और ज्ञान खो बैठे। निर्बल और पौरुष विहीन हो जाने से जैसा ईश्वर का सहारा लेना सूझता है वैसा तब नहीं जब हम में बल और सामर्थ्य मौजूद है। भक्ति और प्रतिमा से एक बड़ा लाभ अवश्य हुआ कि जब अत्याचारी मुसल्मान देश भर को दीन इसलाम का पैरोकार किया चाहते थे और हमारे धर्म ग्रन्थों को जला कर उच्छिन्न कर रहे थे उस समय इसी भक्ति और प्रतिमा ने हिन्दुआनी की जड़ कायम रक्खा। जड़ बनी रह गई तो अब इस समय सबी रिफ़ार्मर बनते हैं और गाल फूलाय २ हमें सत्य धर्म सिखा रहे हैं।

---

# हम दास हैं।

हम दास हैं कोई ऐसे वैसे दास नहीं हैं। अपने धर्म में दास हैं। समाज में दास हैं। घरमें दास हैं बाहर भी दास हैं। चाल ढाल में दास हैं; रंग रूप में दास हैं, सब दासों के दास महा दास, रामदास, लक्ष्मण दास, कृष्ण दास, शिव दास, भगवान दास, भिखारी दास, प्रेम दास, धरम दास, 'धोबी के' घर धरम दास हैं बाह्मन पूत मदारी।

हम अपने मालिकों के आज्ञाकारी विश्वास पात्र दास हैं अविश्रान्त परिश्रम करते हैं। कभी थकने का नाम तक नहीं जानते और जो कुछ उनके खाने पीने भोग बिलास से बचता हैं चूनी चोकर साग पात खा कर मस्त रहते हैं। मालिक का कैसाही कड़ा से कड़ा हुक्म हो बजालाते हैं कभी किसी तरह का चीं चपड़ करना जानते ही नहीं। अफसोस तब भी विद्रोही और अराजक कहे जाते हैं। हां कभी२ बड़ा दुःख पाने पर कुछ हमारे साथी शोर गुल मचाते हैं और समझते हैं हमारा चिल्लाना और रोना गाना उचित है। क्योंकि हमारे प्रभुवरों में भी ऐसे चिल्लाने वाले हैं उनका बड़ा आदर होता है। ऐसे लोग उनमे पूजनीय समझे जाते हैं। तो क्या कारण कि हमलोग चोर डाकुओं की भांत अपराधी कहे जाते हैं? ऐसे मूर्ख ना समझों की मूर्खता और नासमझी पर हमें हंसी आती है और उन्हें समझाना पड़ता है कि मूर्खों तुमसे और उनसे

आकाश पाताल का अन्तर है वे गौर वर्ण हैं तुम कृष्ण, वे वीर हैं तुम कायर, उनमें एका है तुम्हारे में फूट, वे सशस्त्र हैं तुम निःशस्त्र, वे एक जाति तुम अनेक खण्डों में विभक्त हो, उनके सर्वांग में बल है तुम्हारा आधा अंग लकवा का मारा है, वे सब एक साथ के खाने वाले हैं तुम-चूल्हा चौका के पीछे हैरान हो, तुम्हे धरम पीसे डालता है वे धरम को पुरज़े २ उड़ा डालने वाले हैं, वे कपड़े और फेशन के नये २ तराश खरास में लगे हैं तुम भद्दे से भद्दे सोने चांदी के ज़ेवरों से लद जाने ही को खूबसूरती माने बैठे हो, उनके लिए समस्त भूगोल हस्तामलक के समान हो रहा है तुम जहां जाओ वहीं से निकाले जाओ, सब ठौर निषेध, कहीं पैठारी नहीं, वे अपने मुल्क और जातिके लिये जान देदेने वाले तुम देश और जाति तथा देशानुराग को काली के खप्पर में झोंक अपना ही पेट भरने वाले हो, वे अपने देश के मित्र तुम देश के शत्रु, वे प्रभूणां प्रभु तुम गुलाम दर गुलाम।

अच्छा तो गुलामी से छूटना चाहो तो उनकी नकल के लिये कोशिश करो। उनकी सब बातों की नकल तो बड़ा मुशकिल है तब कुछ तो अपने में लाओ। लो सुनो चुरट मुह में दाब घूमा करो। किसी हिन्दुस्तानी दोस्त को देशी वेष भूषा में देख घिनाया करो। मोटर कार पर चढ़ना सीखो। हमेशा हाथ में छड़ी रक्खो। होटल का पवित्र भोजन किया करो। अलफ्रेड फेशन का बाल कतराये रहो। गुलामी से छुटने का सबसे सहज लटका यह है कि अपनी घर वाली को विलायत भेज दो और वहां ब्रिटिशबार्न सबजक्ट उसके पैदा हो बेप्रयास ही तुम दासता से मुक्त होजाओगे। इतना आज बतलाया इसे खूब मश्क करलोगे तो आगे और बतलावेंगे। एक दास।

---

# सूरत की बेडौल सूरत।

## एक दृश्य।

स्थान—रंग भूमि।

अनेक देश भक्तों का एक साथ विनय—

इधर अब कब देखिहौ महाराज।
दीन दयालु कहा तुम करिहौ, बिगड़त जात समाज।
इतै प्लेग उत काल सतावत, मिलत न नेकु अनाज॥
अहो कृपानिधि कित तुम सोये, होहु गरीब नवाज।
कोउ मारत कोउ अधिक सतावत, दीखत सबै कुसाज॥
द्रवहु बेगि नाथ करूणाकर, नातरू गई सब लाज।
जीवन पै इन दुखित प्रजा के, प्रभो करहु कुछ काज॥

उदासीन बेश में भारत का प्रवेश-इन देश भक्तों की दुःख के साथ परमेश्वर से विनय प्रार्थना पर अपना शोक प्रगट करना—

## धुन जोगिया तिताला।

हाय कैसे जियैंगे प्यारे, विनु अन्न हमारे वारे।
दीन हीन अति छीन दुखित मन, विद्या विभव विसारे॥
गो घृत दूध पालि जिनके तन, सपनेहु दुख न विचारे।
वही हाय अब दूध कौन कह, छांछहु लागि पुकारे॥
रोग शोक तें विकल दुखित हिय, रोअत मोर दुलारे।
कितौ पुकारत सुनत नहीं कोउ, यतन बहुत करि हारे॥
हीन समझ कोउ मारत लातहिं, कोउ कहि नीच पुकारे।
है कोउ धरम वीर जगती में, इन कह देत सहारे॥

## दूसरा दृश्य।

स्थान-मंत्रणा मण्डप।

विविध विरुदावली विभूषित माननीय अनेक सर, सी० आई० ई०, राय बहादुर, दीवान बहादुर, खां बहादुर, आदि कांग्रेस के सभासद यथा क्रम कुरसियों पर बैठे हुए हसता हुआ एक वालंटियर का प्रवेश—

जिनके सत्कार के लिये मैं भेजा गया—उन्हें नेशनलिस्ट समक्ष सत्कार करने से मुंह मोड़ लिया । उनकी सेवकाई और स्वागत वालंटियर न करते हैं न करेंगे । असहाय ठोकर खाते वे भटका किये और भटकेंगे । पता पूछने पर कुछ और का और कह दिया जाता है । अनायास वेचारा तरद्दुद में पड़ जाता है । सवारी का कोई प्रबन्ध उनको होने नहीं पाता । इसी तरह हलाकान हो दूर २ वे भटकाये जाते हैं । पर. फिर भी कहेंगे । वे बड़े वीर और धीर हैं । उनके ढंग से ज्ञात होता है वे बड़े गंभीर हैं । सुकुमार और कोमल होने पर भी पांव प्यादे चल पड़ते हैं । धीरज और साहस के साथ विपद् पार कर लेते हैं । कुछ वालंटियर भी छिप २ कर मदद देते हैं । मैंने सुना है सहानुभूति नेशनलिस्ट भी उनके साथ बहुत रखते हैं ।

एक सभासद् का क्रोध से—निकाल दो ऐसे वालंटियर को जो हम लोगों की खिलाफ मरज़ी कर गुज़रा हो—

एक दूसरे वालंटियर का प्रवेश ।

वालंटियर—महानुभाव मैं भी संवाद आप के पास लाया हूं । कोशिश करके जब मैं हार गया तब आपसे निवेदन को यहां आया हूं । जहां रहते हैं नेशनलिस्ट वहां कई विघ्न मैंने डालना चाहा । घर से निकाल आपका आदेश निवाहा चाहा । पर क्या करूं दैव ने इस काम में कृतकार्य न करना चाहा । गो अमित कष्ट प्रतिनिधियों को बहु बार दिया । दगा कितनी [illegible] दी पर दूसरा ही उपाय उन्होंने जल्द सोच लिया । छेड़ छाड़ करने के लिये दो चार मित्रों से भी कह रक्खा है । कलह बढ़ाने का प्रयत्न बहुत मैंने कर रक्खा है । हैं वे दूरदर्शी सहनशील नीति परायण ऐसे कि बात मेरी एक न लगी प्रयत्न सब विफल गया । हाय प्रभो ! करूं मैं अब कैसे ।

कांग्रेस का एक सभासद्—ईश्वरेच्छा भी उन्हीं के अनुकूल है होनहार कैसा प्रबल है कि बिना हुये नहीं रहता लाचारी है ।

तीसरे वालंटियर का प्रवेश—गया था मैं बाला जी घाट जहां तिलक लेक्चर देता था। उस सिंह की दहाड़ सुन २ कर दिल दहल उठता था। उन सबों को दृढ़ प्रतिज्ञ देख चित्तचलायमान होता था। जोश नेशनलिस्टों में पाय अचंभित मैं खड़ा था। ढंग उनके आर्जव का लख विस्मित मैं बड़ा था। जो कुछ वे कहते थे उसमें बुराई कोई नहीं प्रतीत होती थी। विधि संगत Constitutional विरोध पर प्रतिज्ञा मनोनीत होती थी। स्वदेशी और स्वराज्य के उमंग में फूले नहीं समाते थे। कुछ सूरतें सूरत की भी उस समारोह में संमिलित देख पड़ीं। स्वागत सत्कार में उनको भी मीन मेख न थी।

सब लोगों का अचरज में आय एक दूसरे का मुह देखना।

एक सभासद्—कोई घबड़ाने की बात नहीं है। शहर के गुंडों को बुलाय ऐसा प्रबंध करूंगा कि उनकी कोई बात पूरी न होने पावैगी। लाजपत आता है उसका भी तो स्वागत करना है। वह भी तो नेशनलिष्ट है पर क्या किया जाय लाचारी है। स्वागत सत्कार नहीं करते तो हम सूरत वालों की नाक जाती है।

दूसरा सभासद्—तो इसमें खेद करने की कौन सी बात है। हमें भी तो देशभक्तों में अपना नाम उजागर करना है। कितने काम ऐसे हैं कि दिखाने को किये जाते हैं।

तीसरा सभासद्—लाजपत सुजन और देशभक्त है पर विपक्षियों के दल का है इससे उसके सत्कार में तो मैं सहमत नहीं हूं।

चौथा सभासद्—विगड़ता ही क्या है सत्कार के जाल में डाल उसे भी माडरेट बना लेंगे। पर यह स्वागत कलकत्ते में पारसाल दादाभाई के स्वागत से कम न होने पावे। देख लेंगे मेरे चंगुल से बचा कैसे निकलने पाते। कृतज्ञता के बोझ से उन्हे लाद देंगे क्या आप भी फरमाते।

पांचवां सभासद्—उसे माडरेट बनाना तो टेढ़ी खीर है पर स्वागत तो करना ही है खैर। तो चलो अब उसी की तैयारी में लगैं ( सब गये )।

## तीसरा दृश्य

स्थान—सूरत में रेलवेस्टेशन ।

पानवाला सिगरेट वाला खोनचेवाले का इधर उधर घूमना । वालंटि... का डेलीगेटों को गाड़ी से उतारना । लाला लाजपत को हार पहिनाना और जयध्वनि । डेलीगेटों की आपस में बात चीत । मित्रो लाला लाजपत राय मानो भारत के लाल हैं । बड़े से बड़े राजाओं में मही पाल हैं ! भारत के सुयोग्य सुपुत्र । ईश्वर द्वारा भारत की भलाई करने को हुये नियुक्त ।

एक डेलीगेट—आहा ! भारत के तिलक । भारत के लाल और भारत के महापालक पाल । मेरे लिये मानो येही त्रिदेव हैं । बाल लाल अरु पालको जो सुमिरै दिन रैन । सुफल होय मन कमना कटै काल सुखचैन

सबमिल—धन्य आर्य कुलबीर । लाजपत नरवर श्रीयुत ।

धन्य बन्धु हित करन । धन्य भारत सुयोग्य सुत । इत्यादि *

लाजपत—यदि मैं २१ बारजन्म लै देश सेवा मेरत रहूं । देश के लिये क्लेश सूली का सहूं । तौभी इतना आदर योग मैं कदापि न होता जितना, आपने मेरे प्रतिप्रगट किया । देश मे जागृति मुझे अवश्य प्रतीत होती है । अच्छे आसार भारत के और भलाई सब लखती है । विनय मेरा यही है कृपाकर उसपर भी ध्यान दीजिये । ईश्वर सबका रक्षक है वह जो कुछ करै उसे शिरोधार्य कीजिये । वह जो करता है उसी में हमारी भलाई है । बुरा जिसको आप कहते हो भलाई उसी मे हमारी है । उन्नत चित हो यार परसपर प्रीति बढ़ाओ । कपट प्रेम तजि सहज सबै व्यौहार चलाओ । रखिये दृढ़ बिश्वास धर्म जित है जय उतही । भारत का उद्धार होयगा निश्चय तबही ।

## जयध्वनि

॥ सबो का एक साथ मिलकर गाना ॥

बोलो भैया लेकर तान । हिन्दू हिन्दी हिन्दुस्तान ॥

* प्रदीप के एक पिछले अंक में यह छप चुका है ।

तीसरे वालंटियर का ब्यान । पूरब उयो सूर्य भगवान ॥
तिलक लेचकर देकी लखो सुजान । अब तुम मानो भया बिहान ॥
उठता अपने करतब को पहचान । चित्त लगाकर अरजो ज्ञान ॥
गहो एकता बनो महान । फूट रांड का तोड़ो मान ॥
बोलो भैया करि सन्मान । हिन्दू हिन्दी हिन्दुस्तान ॥

गाते हुये सबों का प्रस्थान

पटाक्षेप प्रथम अंक—कांग्रेस का एक मर्मज्ञ ।

---

## गायत्री का कुत्सित आलाप ।

इन दिनों यहां आर्य समाज की एक स्त्री आई है नाम उसका लोगों ने गायत्री रख दिया है किन्तु जैसा उसमें कुत्सित आलाप पाया गया उससे तो यही कहने का मन होता है कि यह कैसी गायत्री है। गायत्री इस नाम की ज़रा भी सार्थकता इसमें न देखी गई। यह अपने को बड़ी विदुषी प्रसिद्ध किये है लेक्चर देने के समय चिल्लाती और कूदती तो बहुत है पर सुपठिता नहीं मालूम होती। ब्राह्मणों को बेतरह गाली देना ही इसके लेक्चर का सारांश है। पहले तो यह ज़रूर कहा जायगा कि आर्य समाजियों की यह बड़ी भूल है जो इस तरह का आग्रह Bigotry उनमें आलगा है। जैसा अनेक देश की भलाई का उमदा काम ये कर रहे हैं उसमें यह एक बड़ा कलंक और धब्बा है। इससे देश की उन्नति के अपने सिद्धान्त से वे दूर हट जाते हैं। अस्तु इन ब्राह्मणों को उत्तेजित्त करने को उन्हे शरम दिलाओ इसमें हम कोई हर्ज़ नहीं समझते और इनकी फ़ज़ीहत भी की जा पर उतनाही कि जितना बिगाड़ इनमें हो गया है। न कि उसे Exaggeration अत्युक्ति के साथ प्रगट करो और जो बात ब्राह्मणों में कभी देखी सुनी नहीं गई उसकी मिथ्या कल्पना करो। जैसा इसने कहा अमीरों के यहां व्याह शादियों में जो रंडियां बुलाई जाती हैं उनकी खिदमतगारी ब्राह्मणों को सौंपी जाती है। हम ने तो ऐसा कहीं नहीं देखा दूसरे यह कि कितना ही

ज़माना बिगड़ गया है और सामयिक सभ्यता चमक रही है पर हिन्दू कुल का हो कर कोई अमीर चाहे वह कैसा ही अविवेकी हो गया हो हां वह अमीर आर्य समाजी हो तो लाचारी है। यदि हिन्दू वह होगा तो कभी इसे गवारा न करेगा कि ब्राह्मण रंडी का खिदमतगार बने। इन समाजियों में भी बहुत से श्रेष्ठ और पूजनीय पुरुष हैं हम जानते हैं दो एक उन निकृष्ट प्रकृति वालों के नामोद्घाटन से क्या प्रयोजन जो नितान्त ब्रह्मद्रोही हैं। ऐसे अधम प्रकृति वाले निश्चय समझे रहें। जल्दी ऐसा समय आने वाला है कि ऐसे ब्रह्म द्रोहियों के सिर पर लात रख ये ब्राह्मण अपना मान यथा स्थित कायम रक्खेंगे और ये मोची के मोची बने रह जांयगे।

प्रकृतिं यान्ति भूतानि निग्रहः किं करिष्यति।

पंच तत्व निर्मित जो कुछ है सब स्वभाव के अनुसार चलते हैं जैसा जल का स्वभाव नीचे को बहने का है वह अपना स्वभाव छोड़ ऊपर को कभी न जायगा इसीसे आगे कहता है "निग्रहः किं करिष्यति" उसके लिये रोक क्या कर सकता है? सच है "नाहं निन्दे नच स्तौमि स्वभाव-विषमं जनम्" स्वभाव मनुष्यों का एक सा नहीं होता तब हम न किसी की निन्दा करते हैं न प्रशंसा। सच है हमें क्या अधिकार कि हम चोर को चोर कहें न हमारे कहने से उसका चोरी करने का स्वभाव जाता रहेगा। ब्राम्हण चाहे पंखा कुली हो गया हो पर अपनी जाति का अभिमान उसमें अभी जैसा का तैसा टटका बना है और यह बहुत ही शुभ लक्षण है। ब्राम्हणत्व का जोश कायम है तो क्या अचरज कि उसी पंखा कुली के सन्तान में कोई हाईकोर्ट के जज निकल आवें। हम कई एक उदाहरण दे सकते हैं कि पिता उनका प्यून था पुत्र बेरिस्टर और दूसरे बड़े उच्चपद पर पहुंच गया। सच तो यों है कि सबों ने अपनी २ जाति का काम छोड़ दिया ब्राह्मण अब भी अपने गुण कर्म के अनुसार चल रहे हैं। पढ़ें चाहे नहीं पर शिखा सूत्र नहीं त्यागा खेती करते होंगे पर अपने हाड़ की श्रेष्ठता रखने को संस्कार ब्राह्मण का किसी न किसी ढंग पर अवश्य करावेंगे। खाने पीने में विचार भी ज़रूर रक्खेंगे औरों

के समान सर्वभक्षी हुताशः नहीं हो गये। आल्हाराम की तो इन आर्य समाजियों ने इतनी फ़ज़ीहत किया अब इन पर ब्राह्मण जो मुक़द्दमा दायर करें तो क्या उसकी सुनाई सर्कार में न हो? हम आशा करते हैं हमारे आर्य्य भाई अब चेत जांयगे और ऐसी बेहूदा की बकवाद से निरस्त होंगे। अब यह समय आपस में अनबन पैदा करने का नहीं है आगे जैसी उनकी इच्छा।

---

# सच्चा प्रेम।

( यह लेख नागरी प्रवर्धिनी सभा में पढ़ा जा चुका है)

प्यारे प्रेमी पाठको!

जिस प्रेम पयोनिधि का पार पाने में प्रवीण पंडित भी असमर्थ रहे हैं और जिस प्रेम की महान् महिमा की अकथ कहानी शेषनाग की सहस्र जिह्वाओं से भी नहीं गाई जा सकी है उसी प्रेम के विषय में मुझ अल्पमति व्यक्ति का प्रयत्न चन्द्रमा को छूने के लिये बौने के प्रयत्न के समान है। इस प्रेम का संचार स्वयं हृदय के समुद्र में तरंगे उत्पन्न कर देता है और इस का प्रभाव मुर्दे में भी जान डाल देता है। और और विषयों के सम्बन्ध में लोग अपनी अनभिज्ञता प्रगट कर सकते हैं सम्भव है उनकी ज्ञान भूमि में उन विषयों के अंकुर न जमें हों परन्तु प्रेम के बारे में ऐसा करना सर्वथा अनुचित और निष्फल है। क्या प्रेम रस के सामने कभी रुखाई ठहर सकती है? वह कौन सी मरु भूमि है जिसे प्रेम का पयोनिधि उर्वरा न कर सके? और वह कौन सा पाषाण हृदय है जिसमें प्रेम का अंकुर न जम सके? परन्तु तौभी किसी व्यक्ति के हृदय में प्रेम का प्रगाढ़ उद्गार होना एक बात है और उसके ऊपर लेख लिखना तथा लम्बी चौड़ी स्पीचें देना दूसरी बात है। दोनों में परस्पर विरोध है। लेखनी की तेज़ी और वाक्चापल के तारागण तभी तक टिमटिमाते दीख पड़ते हैं जब तक हृदय के आकाश में प्रेम के

सूर्य्य का उदय नहीं होता । ज्योंहीं मनुष्य के ऊपर प्रेम का पूरा अधिकार जम जाता है त्योंहीं उसका कण्ठ अवरुद्ध हो जाता है और लेखनी में शिथिलता आजाती है। मतलब यह है कि प्रेम का विषय जिह्वा और लेखनी से परे है । यह विषय कहने सुनने का नहीं है प्रत्युत स्वयं अनुभव करने का है । यह विषय बड़े २ विद्वानों और शब्द शास्त्र पारंगतों का नहीं है प्रत्युत उन पागलों का है जिन्हें प्रेम के नशे में अपने तन मन की भी सुध नहीं रही । यह विषय शृङ्गार रस पंडिता मंडन मिश्र की स्त्री का है न कि वेदान्त वेत्ता और निरन्तर वैराग्य में पगे शंकराचार्य्य जी का । उसकी अधिष्ठात्री वाग्देवता नहीं हैं प्रत्युत हृदयेश हैं जिनकी मौनमयी परन्तु प्रेम से संक्रान्तमूर्ति के रोम रोम में प्रेम की झलक और प्रेम से संचालित 'अमी हलाहल रस भरे श्वेत श्याम रतनार, नेत्रों का रंग ढंग ही जो कुछ कहता है उसे सहस्र वाग्देवता भी मिल कर प्रगट नहीं कर सकतीं और न किसी पुस्तक अथवा पुस्तकालय ही में समा सकता है। प्रेम को पहचानने की उत्कण्ठा रखने वालों को उन प्रेम प्रमोदिनी समितियों का आश्रय लेना चाहिये जहां प्रत्येक सच्चे प्रेमी [illegible] होने लगता है । [illegible] क्षरों में परन्तु सूक्ष्म दृष्टि से पढ़े

जो निशा प्रेमवद्ध दम्पति के लि[illegible]ंकित हो रही हो। हमारे इन [illegible] निशा [illegible] [illegible] दिखलाना है कि प्रेम एक अद्भुत वस्तु है। जैसा किसी भोज्य पदार्थ का मीठा अथवा तीता होना तब तक नहीं मालूम पड़ता जब तक जीभ उसका स्वयं स्वाद न चख ले उसी प्रकार प्रेम क्या वस्तु है? इसमें क्या २ अद्भुत गुण और शक्तियां भरी हुई हैं? केवल वेही मनुष्य जान सकते हैं जिन्होंने प्रेम-सागर में स्वयं डुबकी लगाई है। जिस प्रकार एक मकान का अंधकार अथवा प्रकाश युक्त होना उस मकान ही पर निर्भर नहीं है बलिक उस मकान में रहने वाले मनुष्य के दीपक जलाने के आधीन है और जिस प्रकार भली भांति समझ सकता [illegible]का होना इस बात पर निर्भर है कि [illegible] दिया है और उसकी संयोग तथा वियोग दोनों उस परंपद को अनुभव किया है। जिनके हृदय में प्रेम का मार्ग अवलम्ब करने

मकान में स्नेह का दीपक जले और इसकी प्रत्येक वस्तु में प्रेम का लवलेश मौजूद हो। एक कवि के वाक्य हैं—मुहब्बत मुसब्बब मुहब्बत सबब। मुहब्बत से होते हैं कारे अजब॥ मुहब्बत ही उस कारखाने में है। मुहब्बत से सब कुछ ज़माने में है॥

ये वाक्य अक्षर २ सत्य हैं। क्योंकि यदि पिता और पुत्र स्त्री और पुरुष, भाई और भाई में परस्पर प्रेम न होता तो क्या संसार का कोई भी कार्य्य चल सकता था? यदि परमाणुओं में परस्पर संलग्न हो जाने की शक्ति न होती तो क्या सृष्टि भर में हम को किसी पदार्थ की स्थिति दिखाई पड़ सकती थी? यदि प्रकृति के पांचों तत्वों में एक दूसरे से सम्बन्ध न होता तो क्या हमको 'धर्मार्थकामभोक्षाणां शरीरं मूलकारणम्' प्राप्त हो सकता था? यदि मनुष्य और मनुष्य के बीच प्रेम का बन्धन न होता तो क्या कोई भी एक दूसरे के काम में आसकता था? जन्म-भूमि का प्रेम ही है जो हम लोग इस समय स्वराज के उत्सुक हैं। कहां तक कहें प्रेम तत्व सृष्टि की स्थिति तथा मनुष्य के जीवन के लिये परमावश्यकीय है। बिना प्रेम के अनुकूल भी प्रतिकूल हो जाता है और प्रेम की शक्ति । सचार स्वय हृदय के समुद्र मे है। प्रेम में पगा हलाहल भी म त का प्रभाव मुर्दे में भी जान डाल में लोग अपनी अनभिज्ञता अमृत में भी कटुता आ जाती है।

अन्य मुखे दुर्वादो यः प्रियवदने स एव परिहासः।
इतरेन्धनजन्मा यो धूमः स एवागुरुसम्भवो धूपः॥

अर्थात् प्रेम भरी गालियां फूलों की वृष्टि के समान मालूम होती हैं और प्रेम शून्य मीठे वाक्य भी नायक के तीरों की तरह मर्म को छेदते हैं। बिना प्रेम दुर्योधन की मेवा मन को न भाई और प्रेम से दिये हुए विदुर के साग और भीलनी के जूठे बेरों से भगवान् रीझ गये। जिस संग मूसा की मूर्ति द्वेषी को काला बात है। दोनों में परस्पर विराध ह। लखना का तेज़ी और वाक्चापल के तारागण तभी तक टिमटिमाते दीख पड़ते हैं जब तक हृदय के आकाश में प्रेम के

धन न्यौछावर किये रहता है उतना कदाचित् काकेशश की एक गौरांगी पर स्वप्न में भी न करेगा। सुग्गा की चोंच जैसी नासिका वाली और कम्बु कलग्रीवा वाली युवतियों पर प्राणार्पण करने वाले आश्चर्य्य की दृष्टि से देखेंगे कि चीनियों और जापानियों को चपटी नाक वाली ललनाएं इतनी अधिक प्यारी हैं कि वे अन्य नितम्बिनियों की ओर आंख उठा कर भी नहीं देखते ।

सरांश यह कि जिस वस्तु को एक मनुष्य निपट सौन्दर्य्यहीन समझ त्याग देता है वही वस्तु एक दूसरे मनुष्य के जीवन का आधार है। यह सब प्रेम ही की विलक्षणता है ।

भिन्न रुचि हि लोकः जिस प्रेम के कारण मनुष्य एक पदार्थ में महान् सुखका अनुभव करता है उसी में दूसरा असीम दुःख। जिस हिमांशु की कौमुदी में प्रेमालीढ़ हृदयों को एक समय सुधा की वृष्टि का सुख प्राप्त होता है वही मृगलांछन विरह संतप्त को प्रचण्ड मार्तण्ड सदृश हो जाता है । जिस स्थान में एक समय इन्द्रभवन का भी सुख तुच्छ मालूम पड़ता है वही स्थान दूसरे काल में निर्जन बन के समान भयंकर प्रतीत होने लगता है ।

जो निशा प्रेमबद्ध दम्पति के लिये निमेष मात्र में व्यतीत हो जाती है वही निशा चक्रबाक युगल को कालरात्रि सा भयंकर रूप धारण कर लेती है । यह प्रेमियों ही की अवस्था में देखा जाता है कि नवजात पादपों की कोमल कलियां भी कठोर कण्टक में परिणत हो जाती हैं और शीतल, मन्द, और सुगन्धित समीर भी सर्प की विषैली स्वांस के समान दुखदाई जान पड़ती है। मेघ उनके लिये गरम तेल बरसाते हैं और त्रिभुवन तम नाशक मरीचिमाली भगवान् सूर्य्य के प्रकाश से परिपूर्ण सम्पूर्ण भूमण्डल उनको कज्जल से कलुषित कारागार के समान भासने लगता है । इस प्रेम की अपार लीला को वही प्रेमी भली भांति समझ सकता है जिसने सच्चे प्रेम में लिया। इसी के दिया है और उसकी संयोग तथा वियोग दोनों उस परंपद को अनुभव किया है। जिनके हृदय में प्रेम का मार्ग अवलम्ब करने

गया अथवा जो झूठे और बनावटी प्रेम से अपना काम चला रहे हैं उनके लिये इसका मर्म समझना असम्भव है ।

संसार में अनेक पदार्थ असली और नकली दो तरह के होते हैं उसी प्रकार प्रेम के भी दो भेद हैं । ऐसे उदाहरण कम नहीं मिलते कि एक मनुष्य दूसरे को पहिले तो क्षति पहुंचाता है फिर उसी के पास आकर आंसू बहाने लगता है और इस प्रकार अपनी हार्दिक सहानुभूति दिखाता हैं। ऐसे जीव भी कम नहीं हैं जो राजा पुरूरवा की तरह उर्वशी में तो प्रेमालीढ़ हैं और रहस्य भेद के भय से अपनी रानी के प्रति अत्यन्त प्रेम प्रगट करते हैं । संसार में उन चाटुपर और ख़ुशामदी मनुष्यों की भी कमी नहीं है जो अपनी किसी अर्थ सिद्धि के लिये दासानुदास बने रहते हैं और जिनका रात दिन उनही का गान गाने में बीतता है । ये सब बनावटी प्रेम के लक्षण हैं । हमारी समझ में तो उन लोगों का प्रेम भी असली प्रेम नहीं है जो सौन्दर्य अथवा काम के वशीभूत हो किसी के प्रेमी बन बैठे हैं । प्रति क्षण जिनकी आंखों के सामने वही सूरत खड़ी रहती है । जिसके विरह की ज्वाला हरदम उन्हें भस्मसात् करने को उद्यत रहती है और जिसके समागम के लिये प्राण इस शरीर से पल पल पर निकल कर भागने को तैयार रहते हैं । यह प्रेम अवश्य है परन्तु नैमित्तिक है जिसका चिरस्थायी होना संदेह युक्त है । संभव है उस नाशवान् निमित्त के न रहने पर उसका आश्रयीभूत प्रेम भी न रहे ।

सच्चा प्रेम इससे भिन्न होता है । वह स्वाभाविक है किसी के निमित्त से नहीं । और यदि कोई निमित्त भी हुआ तो ऐसा नहीं कि जिसकी चांदनी चार दिन अपनी चटक दिखाकर फिर अन्धकार अथवा जिसके बहार के दिन ख़िज़ां की तरह कोई दम में काफ़ूर हो जांय । सच्चे प्रेम का निमित्त आन्तरिक होता है वाह्य नहीं, सच्चे प्रेम जिस संग मूस ( भीतरी गुण ) के गुलाम होते हैं न कि सूरत के ।

विराध है । ल और झुक कर बड़े बड़े मेधावी और कार्य्य कुशल पुरुषों तक टिमटिमाते प्रेम निष्फल हो गया और जिस और बड़े २ योग का

दम भरने वालों को दम भर में फंदे में फांस लिया उस सूरत को दूर ही से नमस्कार है ।

इसके गोरे और चमकते हुये आडम्बर की चमक दमक चाहो कितना ही मन को क्यों न लुभाती हो सच्चे प्रेम की झलक का लेश वहां नहीं है । तनिक सी लालिमा लिये हुये आर्द्र और पतले होटों के पंकज वर्ण से ढंपी नन्हीं नन्हीं दंतियों की चित्ताकर्षक आभा और मन्द मुसकान कितना ही मन को मोहित क्यों न करती हों किन्तु उनके बाहिरी चमत्कार को सच्चे प्रेम का प्रकाश समझ लेना उस निर्बुद्धि मृग के भ्रम से किसी अंश में कम नहीं है जो एक बालुकामय भूमि को जल मय झील समझ इधर उधर भागता फिरता है । सच्चे प्रेम की खोज करते हुये हम को उसके प्रतिनिधि स्वरूप महावंचक मोह से सदैव होशियार रहना चाहिये । इसकी उत्पत्ति अविद्या से है और इसमें अकसर तो आत्म सान्त्ववन का और बहुत सी जगहों में मन बहलाव ही का स्वार्थ मिला रहता है। एक निःस्वार्थ भी मोह होता है जो अनेक मनुष्यों में और प्रायः समस्त पशुओं में अपने बच्चों की ओर देखने में आता है । यह स्वाभाविक परन्तु क्षणिक होता है । पक्षी अपने अंडों को बड़ा कष्ट उठा कर सेता है और बच्चों के लालन पालन में प्राणों तक को कुछ नहीं समझता परन्तु जब वे बच्चे अपनी रक्षा अपनेआप करने लायक हो जाते हैं तब वह उन्हे बिलकुल भूल जाता है । एक गाय का अपने बच्चे के प्रति सम्पूर्ण प्यार और दुलार दूसरे बच्चे के उत्पन्न होने ही तक रहा है । यह सब मोह जाल है जिससे बचे रहने को ऋषियों मुनियों ने श्रुतियों और स्मृतियों में मनुष्य का मुख्य कर्तव्य बतलाया है । इसमें और सच्चे प्रेम में ज़मीन आसमान का अंतर है । मोह संसार का एक बंधन है परन्तु प्रेम संसार से मुक्त करने का एक मुख्य साधन [illegible] ोह का अंधकार ज्ञान चक्षु को विफल बना देता है परन्तु [illegible] प्रकाश अदृश्य और अत्यन्त सूक्ष्म पदार्थों और कर्मयोग का मार्ग [illegible] देता है ।

मोह का उद्गार केवल दुख का देने वाला होता है परन्तु प्रेम का संचार महान् आनन्द का कारण है ऐसे ही प्रेम के पियाले को पी मनुष्य अपने आप को बिल्कुल भूल जाता है। इस सच्चे प्रेम की प्राप्ति सुगम नहीं है। कठिन से कठिन पदार्थ भी इसी के द्वारा प्राप्य हैं। एक हृदय की बात को बिना किसी वाह्य सम्बन्ध के दूसरे हृदय में पहुंचाने वाली बिना तार की तारवर्क़ी यही है और ज्यों ज्यों दूर सिधारिये त्यों त्यों लांबी होने वाली और दृढ़ता पकड़ने वाली अद्भुत डोरी इसी की है। यह सच्चे प्रेम ही का रोग है जिसे धन्वन्तरि जी भी दूर नहीं कर सकते और यह सच्चे प्रेम ही का कारण है कि एक विरहिणी नायिका झुंझला कर कहती है:–

जाति मरी बिछुरत घरी जल संफरी की रीति।
छिन छिन होत खरी खरी अरी जरी वह प्रीति॥

जिस प्रेम की प्रबलता परोक्ष में कम हो जाय वह सच्चा प्रेम नहीं है। सच्चे प्रेम की शिक्षा ऐसी प्रेमपगी नायिका से लेनी चाहिये जो अपने नायक के वियोग में कहती है:–

बिछुरे पिय के जग सूनो भयो अब का कहिये केहि लेखिये का।
सुख छांड़ि के संगम को तुम्हरे अरु तुच्छन को अवरेखिये का॥
हरिचन्द जू हीरन के व्यवहारन कांचन को ले के परेखिये का।
जिन आंखन में तव रूप बस्यो उन आंखन ते अब देखिये का॥

सचे प्रेम में कभी वियोग होता ही नहीं। इस लिये कि वियोग बहुधा स्थूल शरीर का होता है प्रेम का सम्बन्ध सूक्ष्म शरीर है जो एक बार दूसरे में लय हो फिर अलग होना जानता ही नहीं। प्रेमी के हृदय का बन्दी गृह भी इतना मज़बूत होता है कि उससे निकल कर भागना असम्भव है। भगवान् के हांथ छुड़ाकर भागने पर सूरदास जी यह दोहा [illegible] मूस–

ह। [illegible] छुड़ाये जात हो निवल जानि के मोहि।
[illegible]मातें [illegible] निष्फल हो [illegible]जि तब मैं जानूं तोहि॥

प्रेम की डोरी से जकड़ा हुआ हृदय का बंदी गृह ईश्वर ने प्रत्येक प्रेमी को दिया है। पुष्पबाटिका से जाते हुये राम को सीता ने हृदय में रख कर पलकों के कपाट दे लिये थे और इसी किले में शकुन्तला ने दुष्यन्त को बन्द कर लिया था। यही बल है जिसके भरोसे पर एक प्रेमी प्रेम के रणक्षेत्र में निर्भयता के साथ आ कूदता है और अपने प्रतिपक्षी को पकड़ने का साहस करता है। यही बल है जो अभीष्ट प्राप्ति पर्यन्त बड़े २ विघ्नों और कष्टों में भी आशा को नहीं टूटने देता।

सच्चे प्रेम की आकर्षण शक्ति समस्त शक्तियों में प्रबल शक्ति है। ऐसा लोहे अथवा फ़ौलाद का हृदय होना असंभव है जिसे प्रेम का चुम्बक अपनी ओर न खींच ले।

यह बात केवल लौकिक विषयों ही में सत्य नहीं है बरन पारलौकिक बातों में भी ठीक है। ईश्वर प्राप्ति के लिये जो भक्ति मार्ग का महत्व दिखलाया है वह किसी से छिपा नहीं है, बृहन्नारदीय पुराण में लिखा है:—

यथा समस्त लोकानां जीवनं सलिलं स्मृतम्
तथा समस्त सिद्धीनां जीवनं भक्तिरिष्यते।

जिस प्रकार सब लोगों को पानी जीवन का सहारा है उसी प्रकार सम्पूर्ण सिद्धियों के लिये भक्ति परमावश्यकीय है। एक स्थान पर यहां तक कहा है।

अश्वमेध सहस्राणां सहस्रं यः करोति वै।
न तत्फलमवाप्नोति मद्भक्तैर्यदवाप्यते॥

अर्थात् लाखों अश्वमेध यज्ञों से भी उतना बड़ा फल प्राप्त नहीं होता जो भक्ति से मिलता है।

यह भक्ति सच्चे प्रेम ही का नामान्तर है। इसी की नौका में बैठ अनेक भक्तों ने इस संसार के अपार समुद्र को पार कर लिया। इसी के द्वारा अधमाधम म्लेच्छ जाति वाले भी सहज ही में उस परंपद को पा गये जिसकी प्राप्ति में ज्ञान और कर्मयोग का मार्ग अवलम्ब करने

वाले अनेक कठिन साधनों के द्वारा भी सफल नहीं हुये। इसी के सहारे बहुत से गोप और गोपियां खेलते कूदते और संसार के समस्त सुखों का उपयोग करते हुये भी श्रीकृष्ण भगवान् के चरणारविन्द तक पहुंच गये। जिसकी प्राप्ति के लिये अच्छे २ संसार के त्यागी और वैरागी अबतक टक्करें खाते फिरते हैं। गोप और गोपियों की भगवान् के प्रति अनन्य भक्ति अकथनीय थी। वे उन्हीं को 'त्वमेवसर्वं मम देव देव' समझते थे, उन्हीं के लिये उनका खाना, पीना, नाचना, गाना और रास-विहार सब कुछ होता था। उन्हीं के लिये उनके प्राण तक न्यौछावर थे। यह केवल सच्चे प्रेम ही की लीला है जिसको बहुत से मूर्ख बिना समझे बूझे कृष्ण भगवान् को कामी होने का दोष लगाते हैं। इस सच्चे प्रेम के समझने के लिये बड़ी बुद्धि और सद्विचार की आवश्यकता है वे मलिन हृदय इसे कदापि नहीं समझ सकते जो अपनी संकीर्ण मति में काम से भिन्न प्रेम का किञ्चित् अनुमान ही नहीं कर सक्ते। जिन्होंने इसे समझा है और इसके परमतत्व को पहिचाना है वे, दोष लगाना तो अलग रहा, स्वयं इसी में प्रवृत्त और उसी के रंग में मस्त हो जाते हैं। सच्चा प्रेम एक योग का साधन है। योग का उद्देश्य ईश्वर से मिलना है। चित्त की वृत्ति का निरोध सच्चे प्रेम के द्वारा ही साध्य है। तो सिद्ध हुआ कि सच्चा प्रेम लौकिक अभीष्टों ही को नहीं प्रत्युत पारलौकिक पद भी प्राप्त कराने के लिये उपकारी है। हम सबों का कर्त्तव्य है कि इसके महत्व को पहचानें और इस अद्वितीय धन के उपार्जन का उद्योग करें॥

इतिशम् मिश्रीलाल

## मिस्टर केयर हार्डी की जांच।

नीचे का लेख जनवरी १९०८ के माडरनरिव्यू से अनुवादित किया गया है। जिसमें यहां के दिहातों की सच्ची हालत दिखाई गई है।

इस लेख का भाषान्तर करने से मेरा यह तात्पर्य नहीं है, कि हम मिस्टर केयर हार्डी की जांच को बड़े लम्बे चौड़े शब्दों में सराहें। क्योंकि बहुधा इस तरह की सराहनाओं से भारत की दिन २ हानि ही होती

गई। मि० केअर हार्डी के समान कितने विदेशी यहां नहीं आये और यहां की दशा देख इतनी सहानुभूति झलकाया कि हम लोगों को यही मालूम हुआ कि बस अब हमारे सब दुख दूर हुये और इस आशा ही आशा में भारत की गर्दन कटती गई पर बाल की रक्षा होती रही। उन बड़े लोगों को भारत की वर्तमान दशा जताने से हमें कोई प्रयोजन नहीं है क्योंकि उन्हें इससे कोई सरोकार नहीं है कि यहां के ग़रीबों को क्या क्लेश है। उनकी चैन से कटती है तो वे समझते हैं देश का देश खुशखुर्रमी की हालत में है।

## "उपानद्गूढ़पादस्य सर्वं चर्मावृतेव भूः"।

जो पांव में जूता पहने है वह कांटा गड़ने का दुःख क्या जाने वह यही समझता है कि सम्पूर्ण धरती चमड़े से ढंकी पड़ी है। हमें जताना उन्हें है जो Suffer देश की बुरी दशा के कारण हर तरह का अनन्त दुःख सह रहे हैं। वे अपने देश की दशा पर विचार करें और इसके प्रतीकार के लिये कमर कस उद्यत हों जिसमें आगे को उनकी सन्तान सुख से ज़िन्दगी काट सकें।

हार्डी साहब की यह जांच चौबेपुर की है जो बनारस के ज़िले में एक गांव है और यह गांव बनारस शहर से क़रीब ११ मील पच्छिम तरफ़ है। हार्डी साहब ने जो जांच किया उससे उनको पूरा विश्वास हो गया कि अधिकतर मनुष्यों को दिन भर में एक जून भी भर पेट भोजन नहीं मिलता।

१९०७ के अक्टोबर मास में करीब दोपहर के मिस्टर केयर हार्डी मोटर पर सवार हो शहर बनारस से चले। सड़क के इधर उधर जो गांव पड़ते थे उनको देखते जाते थे बहुत ही थोड़ी दूर जाने के बाद यह प्रत्यक्ष मालूम हुआ कि मि० हार्डी भारतवर्ष में वैसे ही शुद्ध भाव से घूम रहे हैं जैसा कि आपका शुद्ध अन्तःकरण है। शहर से बहुत दूर नहीं गये थे कि बहुत से बाग और वृक्षों के कुंज देख कर आपने पूछा "क्या इस देश के इस हिस्से का यह कोई गांव है?" आपको उत्तर मिला और

आपने अति शीघ्र अनुमान भी कर लिया कि ये शहर के ऐय्याश अमीरों के बाग़ हैं जो अकसर नगर के बाहिरी ओर होते हैं। ज्यों ही यहां से आगे बढ़े एक दूसरे तरह का दृश्य आपके सामने आया। जोते हुये खेत को देख आपने कहा ज़मीन तो यहां की अति उपजाऊ मालूम होती है। यहां पर यदि पानी और खाद खेत में दी जाय तो अन्न बहुतायत से पैदा हो सकता है लेकिन तुरन्त ही आपको मालूम हो गया कि यदि बरसात का पानी न हो तो कितनी हालतों में बहुत ख़र्च पड़ने से खेत के सिचाने में हानि ही उठानी होती है और गोबर जो खाद की एक प्रधान वस्तु है इस काम के लिये नहीं बच सकता। क्योंकि साधारण तौर से इसकी उपली पथ जाती है जो ईंधन के काम आती है और नगर के पास के गांव वाले इसे बना कर शहर में बेंच आते हैं। जिससे उन्हें बहुत ही थोड़ा लाभ होता है पर किसी न किसी तरह से उन बेचारे ग़रीबों को कुटुम्ब के पालने में वह दाल में निमक समान मदद पहुंचाता है। इस बात का अनुभय केयर हार्डी साहब को मालूम हो गया जब दो पहर बाद आप गांव को देख भाल कर लौट रहे थे। आपने देखा कि बहुत से मर्द और औरतें शहर से लौट रहे हैं उनमें से कुछ तो खाली झौवा या टोकरा लिये हुये थे और दूसरे कुछ थोड़ा बहुत अन्न या दूसरी चीज़ें लिये हुये थे। ये बेचारे ग़रीब देहाती सबेरे उपली का बोझ लेकर शहर में गये थे जिसे वे बेंच उसकी कुछ ज़रूरी चीजें ख़रीद कर इस समय (शाम) को लौट रहे थे। इस तरह से वे सारा दिन इस दुख दाई रोज़गार में व्यतीत करते हैं और जो ऐसे समय में उन की ज़िन्दगी का एक ख़ास ज़रिया है। ये सब बातें जान कर मि० हार्डी के दिल पर बड़ा असर हुआ। कुछ मिनट के बाद मि० हार्डी ने मोटर को आगे बढ़ा एक ज्वार के खेत के पास रोक दिया। आप उतर कर उसी खेत में गये और फ़सिल की दशा जांचा। यहां रंज पैदा करने वाली हास्यमय एक घटना घटित हुई जो कि प्रजा के गरीबी की कहानी आप ही कहे देती थी। हमने सड़क के पास ही के झोपड़े से पीने के लिए जल मांगा। एक मनुष्य जिसका बदन बिलकुल ठठड़ी सा था हकला बकला बाये पेट खलाए टूटा हुआ

कई छेद का लोहे का गगरा पानी से भरा हुआ लिए बाहर आया। उससे एक और गिलास पानी पीने के लिए मांगा गया तो उसने रो कर उत्तर दिया कि उसके पास एक छोटा सा बर्तन और था पर कुछ दिन हुए चोरी होगया और तबसे वह केवल उसी टुटहे कई छेद वाले गगरे ही पर सन्तुष्ट रहता है। पानी रखने के लिए उसके पास सिवाय इस गगरे के और कुछ भी नहीं है उस टुटहे गगरे को भी मि० हार्डी के पास लाने में वह संकोच करता था क्योंकि वह डरता था कि कहीं साहब उस बचे हुये गगरे को भी न छीन लें। मि० हार्डी ने जब यह सुना तो हमें उसको विश्वास दिलाने के लिए कहना पड़ा कि मि० हार्डी इस तरह की बातें कभी भी न करेंगे। तब वह मनुष्य सड़क पर आया जो डरसे कांप रहा था। मि० हार्डी ने ख़ूब नज़र गड़ा कर इसकी तरफ़ देखा जो भारत वर्षीय खेतियर का एक प्रतिरूप था। इसी समय एक चौकीदार आया और बड़ी लम्बी चौड़ी बन्दगी हार्डी साहब को किया।

साहब आगे बढ़े-उन्होंने बहुत से धान के खेत ऐसे देखे जो बिलकुल ही सूखे थे और कितने तो ऐसे थे जिनमें हल तक नहीं चला था क्योंकि उन खेतों में कहीं नमी नाम को भी न थी। आपने समझ लिया कि यह सब लक्षण बड़े भारी दुर्भिक्ष के हैं। कुछ जगहों में आपने देखा कि कितने ही मनुष्य धान के खेत में बड़ी मेहनत से बरसात के अवशिष्ट जल से जो अब तक भी कहीं २ गढ़हों में थोड़ा बहुत शेष रह गया था दोगला चला कर खेत सींच रहे थे। इङ्गलैण्ड के खेत की बातें आपने स्मरण कर पूछा कि इतने बड़े मैदान के यह छोटे २ टुकड़े कर मेड़ से अलग क्यों कर दिये गये। इतना बड़ा खेत एक ही क्यों न रहा। तब यह उनको समझाया गया कि ये खेत जो उनके दृष्टि के सामने हैं किसी एक मनुष्य के अधिकार में नहीं है बल्कि मेड़ से जितने टुकड़े किए गये हैं उतने ही जुदा २ मनुष्यों के खेत हैं। कुछ थोड़ी सी और बातें इन चीज़ों के बारे में हुईं जो आपने रास्ते में देखा था। इतने में चौबेपुर में आकर मोटर ठहराई गई।

रास्ते में बहुत से छोटे २ गांव पड़े थे परन्तु चौबेपुर ऐसे गांव को पहले देखने का विचार किया गया था क्योंकि और गावों से यह एक बड़ा गांव है। इस गांव में दो ग्राम पाठशालायें हैं एक लड़कों की और एक लड़कियों के लिए और एक थाना भी था। इन सब बातों से यह क़सबा माना गया था पर कितनी ही बातों में यह एक गांव का नमूना था। स्थान जहां मोटर ठहराई गई थी ग्राम पाठशाला के ठीक सामने था। मि० हार्डी तुरन्त स्कूल के भीतर गए और अपनी जांच शुरू कर दी। बनारस या दूसरे प्रान्त के थोड़े से स्कूलों में यह एक बड़ा स्कूल है। रजिस्टर में २५७ लड़के गिनती में थे। मय इसकी शाखाओं के यह चार मकानों में विभक्त था। उनमें से एक मकान में जिसमें हार्डी साहब पहिले गये निस्सन्देह देखने योग्य था। वे मकान खपड़ैल के थे जिसमें बांस वा लकड़ी के खम्भे थे। यह मकान चारो ओर से खुला हुआ था जिसमें चारो तरफ़ से हवा झपेटा मार रहा था। ऐसे जगह चीथड़े दार कपड़ा पहने लड़के लोग इस स्कूल को बर्त रहे थे। वे बेचारे छोटे २ टाट के टुकड़ों पर लम्बी कतार बांध उकरूं बैठे थे। इनकी पंक्तियों के सिरे में एक टेबिल धरा था जिसके पास एक कुर्सी रक्खी थी। मि० हार्डी ने चारो ओर एक बार दृष्टि फेरा और बगल की कुर्सी पर बैठ गये। स्कूल के हेड मास्टर को इन दर्शकों का आगमन जताया गया और ज्योंही ये आए मि० हार्डी उठ खड़े हुए और वह कुर्सी उन्हें दे दिया। हेड मास्टर साहब खड़े रहना ही उचित समझा क्योंकि वहां सिवाय उस कुर्सी के और कोई चीज़ बैठने को न थी और तब तक ये बराबर खड़े रहे जब तक हार्डी साहब इम्तिहान ले रहे थे।

यहां पर यह कह देना उपयुक्त होगा कि हार्डी साहब की जांच वा देख भाल बहुत ही सही और न्याय के साथ थी। वो जिससे जो कुछ सवाल करते थे और उसका उनको जो कुछ उत्तर मिलता था वह उतने ही शब्दों में हार्डी साहब को समझाया जाता था जितना कि उनके मुख से निकलता था। और यदि कोई सवाल दुभाषिये को करना होता तो पहले वह मि०. हार्डी से जता देता था। यदि

कोई सवाल करने पर उसका उत्तर न समझने के कारण ठीक २ न मिलता तो उसी सवाल को दोहरा-तेहरा कर और सवाल का ढंग बदल कर कुछ न कुछ मतलब साहब निकाल ही लेते थे।

लड़कों का नम्बर जो स्कूल में पढ़ रहे थे मालूम कर आपने हेड मास्टर से पूछा कि वे बता सकते हैं कि कितनी आबादी में से कितने लड़कों को इस स्कूल में शिक्षा दी जाती है ? हेड मास्टर ने इसका कुछ जवाब न दिया। उन्होंने तब अपने सवाल को बदला और पूछा कि हेड मस्टर साहब जानते हैं कि कितने गावों के लड़के इस स्कूल में पढ़ने आते हैं ? इसका भी उत्तर न मिल सका। उन्होंने फिर अपने सवाल को बदला और पूछा ज़्यादा से ज़्यादा कितने दूर के गावों के लड़के इस स्कूल में आते हैं ? दूरी आप को दस माइल के गावों की बताई गई और यह बात तुरन्त हार्डी साहब को मालूम होगई कि इस ज़िले में स्कूल की बड़ी कमी है। उस ज़िले में स्कूल के नम्बर के बारे में कुछ और सवाल करने के बाद जिसका कि कोई ठीक उत्तर न मिला वे दूसरे विषय पर झुके।

उन्होंने पूछा कि क्या गवर्नमेण्ट कुछ अलग टैक्स इन स्कूलों के लिए लेकर इन स्कूलों को चलाती है ? और क्या गवर्नमेंट का यह कोई नियम है कि साल गुज़ारी का इतना रुपया इन बातों में व्यय करे? इन स्कूलों के मुताल्लिक़ किन २ अफ़सरों को सरकार से तनख़ाह मिलती है। और किन २ को बोर्ड से ? इसी तरह के बहुत से सवाल किये गये परन्तु उत्तर इन सब सवालों का बहुत ही असन्तोष दायक सा था। मि० हार्डी यह समझ कर कि इन बातों के बारे में उन लोगों से अधिक नहीं मालूम हो सकता और यदि कुछ अधिक जानना हो तो वे उनसे पूछ कर अच्छी तरह से मालूम कर सकते हैं जिनसे इन बातों का तअल्लुक़ है और जो इन सब बातों को अच्छी तरह से जानते हैं।

मि० हार्डी स्कूल की सामिग्री तथा और दूसरी चीज़ों के जांच की तरफ़ झुके लेकिन इसमें उनका अधिक समय न लगा क्योंकि वे सब

बहुत न थे। कुर्सी यहां थी तो टेबिल वहां बेंच एक जगह तो चारपाई दूसरी जगह-सिवाय इन सबों के वहां फटे हुये टाट के टुकड़े थे जिन पर विद्यार्थी लोग उकरूं बैठे थे। मि० हार्डी का ध्यान एक छोटे से कागद की दफ़्ती की तरफ़ खिचा जो कि दिवाल में टंगा हुआ था।

यह एक फटा हुआ कागद का तख्ता था जिस पर वर्णमाला के अक्षर किसी एक अध्यापक का लिखे हुये थे। मि० हार्डी ने पूंछा क्या यह डिसस्ट्रिक्ट बोर्ड से मिला है? लेकिन यह मालूम हुआ कि यह उसी स्कूल के किसी मास्टर ने बना कर टांगा था। उन्होंने फिर पूंछा कि स्लेट तख्ती या और दूसरी चीज़ें जो लड़कों के पास है वह उन्हें स्कूल से मिली है या डिसस्ट्रिक्ट बोर्ड से? इसके उत्तर में उनको बताया गया कि लड़कों के पास जो कुछ चीज़ें हैं वे सब उन्हीं की हैं और वे अपनी निज की अपने साथ लाते हैं। स्कूल की चीज़ों की बहुत अधिक जांच न कर आप शिक्षकों की ओर झुके और हेड मास्टर को सम्बोधन कर बड़ी शिष्टता से पूंछा आप बता सकते हैं "आप को कितना मासिक वेतन मिलता है?" इस सवाल से आप को मालूम हुआ कि हेड मास्टर साहब का भाग्य बढ़ते बढ़ते इस समय ३०) रु० पर मोल लेलिया गया है। और इस तरह के स्कूलों के हेडमास्टरों में बहुत ही थोड़े ऐसे हैं जिनकी किस्मत में इतने रुपये भी मिलना बदा है। मि० हार्डी की अनुमति से दूसरा सवाल हेड मास्टर से पूंछा गया और स्पष्ट मालूम हो गया कि किस्मतवर हेड मास्टर ३० वर्ष से इस स्कूल में काम कर रहे हैं तब इस तीस रुपये के अतुल सम्पत्ति के पाने के हक़दार हुये हैं। यह हेड मास्टर साहब सफ़ेद बाल वाले बूढ़े आदमी थे और दूसरे मास्टरों की तनख़्वाह इससे भी कम थी। मि० हार्डी को यह जताया गया कि इन बेचारों के माथे पूरा २ कुटुम्ब पड़ा हुआ है और इस वेतन से जो ये लोग पाते हैं अत्यन्त कठिनाई से उनकी आवश्यकताएं पूरी हो सकती हैं। स्कूल की विज़िटर्स बुक में अपनी राय लिखने को यह उन्हें जताया गया कि शिक्षकों को जो वेतन दी जाती है बहुत कम है। उनको इससे अधिक तनख़्वाह देने की ज़रूरत है और यदि वे उत्तेजित किये जायं तो इससे कहीं अधिक अच्छा काम दिखला सकते हैं।

अब मि० हार्डी को Teachers' training Class दिखलाया गया जो इसी स्कूल में लगता था। इसमें चार विद्यार्थी एक टेबिल के चारों ओर बैठे थे और यहीं उनका उस्ताद भी बैठा था। मि० हार्डी ने यहां भी बहुत से सवाल किये जैसे कि सिखलाने का तरीका इसकी कक्षायें-कितने ट्रेनिङ् स्कूल यहां हैं और उनमें कितने दर्जे तथा पढ़ाने वालों का क्या वेतन है इत्यादि।

उत्तर मिला ऐसे ट्रेनिंग स्कूल बहुत थोड़े हैं यहां ये अध्यापक बेचारे कठिनाई से अपनी ज़िन्दगी खे रहे हैं जो कुछ काम उन को सौंपा गया है उस पर ध्यान दो तो समय के अनुसार और उनके मेहनत के मुताबिक़ उनको बहुत थोड़ा वेतन मिलता है। मि० हार्डी तब विद्यार्थियों की तरफ झुके लड़के चुप चाप अपनी किताबें और कागद बस्ते में रक्खे ज़मीन पर बैठे थे हार्डी साहिब ने पूछा उनके पास कोई चीज़ लिखने को भी है? साहब को बतलाया गया कि हां है तब उन्होंने अपनी इच्छा इसे देखने की प्रगट किया कि किस तरह से वे लिखते हैं। जो उनको तुरन्त दिखलाया गया। साहब ने देखा कि लड़के कागद को स्लेट पर रख अपने घुटने की टेक दे लिख रहे हैं। सरकिन्डे की क़लम जिससे वे लिख रहे थे साहब के लिये कदाचित् नई बात थी। फिर पूछा क़लम को कौन काटता वा बनाता है। बतलाया गया कि करीबर सब लड़के इस काम को आपही आप कर लेते हैं। आप ने इस के बनाने का तरीका देखना चाहा और वह तुरन्त उनके सामने बनवाकर दिखा दिया गया। चाकू जिससे कलम काटी गई थी उसे देखकर पूछा क्या हर एक लड़का अपना एक खास चाकू रखता है परन्तु वहां सिवाय उस चाकू के और कोई भी चाकू दिखलाई न दिया। उन को बताया गया कि सब इसे नहीं रख सकते बलिक स्कूल भर मे दो ही एक लड़के ऐसे होते हैं जिनके पास एक चाकू रहता है और वह अपने सब साथियों का काम चलाता है। उन्होंने तब उसी चाकू को अपने हाथ में लिया और देखा कि चाकू जरमनी का बना उसपर खुदा हुआ है। तदनन्तर साहब की एक निगाह उनकी पुस्तकों पर पड़ी। पुस्तकें हिन्दी मे थीं और पूछा आमतौर पर यह किस दर्जे में पढ़ाई जाती हैं। तब उन्होंने

दरयाफ़ किया कि कितने मुसलमान बिद्यार्थी इस स्कूल में पढ़ते हैं? वहां केवल एकही मुसलमान बिद्यार्थी था। मुसलमान लड़कों का इतना थोड़ा नम्बर इस इस्कूल में होने का कारण मिस्टर हार्डी को बतलाया गया कि इस गांव में मुसलमान की बस्ती बहुत ही थोड़ी है।

मिस्टर हार्डी ने तब पूछा कि कितने लड़के यहां खेतिहर के हैं और कितने रोज़गारियों के? नम्बर मालूम करने के लिये हांथ उठवाये गये और तब यह देखा गया कि दोनोंही लोगों की अधिक या अच्छी संख्या है। मिस्टर हार्डी ने तब पूछा कि कितने लड़के आगे की शिक्षा के लिये ऊंचे स्कूलों में जा सकते हैं? इस बात के लिये वेही आगे आये जिन का शहर से कुछ ताल्लुक है। उन्होंने तब सवाल किया कि इसके पहिले साल कितने लड़के ऊंचे के स्कूल में गये थे और जब आप को बहुत ही थोड़ा नम्बर मालूम हुआ तो आपने इसका कारण पूछा। एक शिक्षक ने कहा कि आगे की शिक्षा के लिये लड़के ज़रूरी ख़र्च नहीं बचा सकते और इसी से उन की शिक्षा इसी ग्राम पाठशालाही तक रह जाती है। मि० हार्डी ने इसे पहिले से भी अधिक ध्यान देकर सुना। उन्होंने पूछा कि कितने लड़के यहां ऐसे हैं जो ऊंची शिक्षा में जा सकते हैं? यदि उन्हे ज़रूरी खर्च दिया जाय। इस सवाल के जवाब में उन को बहुतही अधिक संख्या लड़कों की मिली। दो तिहाई से भी अधिक लड़कों ने एक बड़ीही उत्सुक दृष्टि से उनकी तरफ़ देख अपना २ हांथ उठाया और ऐसा उनको अनुमान होता था कि बस साहब से हम को अब ख़र्च मिलही जायगा। लेकिन इसके अनन्तर यह पूछा गयाकि कितने लड़के ऐसे हैं जो ख़ास अपनेही खर्च से ऊंची शिक्षा मे जा सकते हैं तब तो नम्बर घट कर दो ही रह गया। आपने फिर पूछा कि ऐसे कितने खेतिहर के लड़के हैं जिन की इच्छा तो है पर कोई ज़रिया न होने से ऊंची शिक्षा मे नहीं जा सकते। मि० हार्डी को इङ्गलेण्ड मे यह बतलाया गया था कि हिन्दुस्तान मे खेतिहर के लड़के बिलकुलही शिक्षा से दूर रहा चाहते हैं पर वहां यह उन्हें साफ़ हो गया कि वे सब बातें निरीं झूंठ थीं। यहां

पर यह ज़रूर कह देना चाहिये कि मि० हार्डी के जांच करने पर जो कुछ उनके चित्त पर असर होता था और जो कुछ कि उनकी राय होती थी उसे वे बहुतही गुप्त रखते थे और जब कोई बात बहुतही असर दार ठीक सिद्ध हो जाती थी तो उन के कितनाही छिपाने पर भी उनकी राय प्रगटही हो जाती थी ।

मिस्टर हार्डी को अब मालूम हुआ कि ऊंचे दरजे के स्कूल शहर में होते हैं और लड़कों को वहां रहकर शिक्षा पाने में बहुतही ख़र्च बैठता है। अब आपने दूसरा प्रश्न यह किया कि गवर्नमेंट या डिस्ट्रिक्ट बोर्ड से इन लड़कों को छात्र-वृत्ति सहायता के ढंग पर किस हिसाब से दी जाती है ? उत्तर मिला कि साल के अन्त में वर्नाक्यूलर मिडिल के नाम से एक परीक्षा होती है उसमें उत्तीर्ण छात्र जो आगे पढ़ना चाहें उनको ३) महीना छात्र-वृत्ति दी जाती है । युक्तप्रदेश में कुल ४८ ज़िले हैं इन ज़िलों में केवल ४० लड़कों को सरकार छात्र-वृत्ति देती है जिसका कुल रुपया १२० सालना हुआ । इंगलैंड में इतना एक साधारण अध्यापक को मासिक दिया जाता है । इसे सुन हार्डी साहब अचरज में आये और पूछा इसके सिवाय और भी कुछ मदद गवर्मेंट की ओर से इन स्कूलों को दी जाती है ? उत्तर मिला नहीं । मि० हार्डी से बतलाया गया कि बहुत से विद्यार्थी दूर के गांवों से ८ बजे सबेरे ही से चल पड़ते हैं यहां सांझ तक रहते हैं । खाने के लिये वे अपने साथ भूंजा चबैना लाते हैं । मि० हार्डी ने उसे देखना चाहा तब चबैने की पुटकियां उन्हें दिखाई गईं । बहुतों के पास मैले कपड़ों में बंधी भूंजी मक्काई किसी २ के पास मटर था । साहब ने थोड़ा सा उसमेंसे ले लिया और अपने पाकेट में रख लिया । कुछ लड़कों को उन्होंने अपने पास बुलाया और खूब नज़र गड़ाय के देखा तो वे बहुत ही दुबले थे । उनमें से कितने ऐसे भी थे जिनके पास तन ढांपने को भरपूर कपड़े भी न थे । फ़ीस यद्यपि लड़कों से दो ही पैसा ली जाती है तोभी उसके वसूल करने में बड़ी कठिनाई पड़ती है। लड़के जब अपने मुरब्बियों को फ़ीस और किताबों के दाम के लिये दबाते हैं यद्यपि इसका बहुत ही थोड़ा ख़र्च है तौभी कितनों को वह अखर आता है। उस ख़र्च को न दे उन्हें वे स्कूल जाने से रोकते हैं और घर पर उनसे घास छिलाते हैं या ऐसा ही कोई दूसरा काम उनसे कराते हैं और कहते हैं जो पैसा घास का दाम मिलेगा या फ़ीस का जो पैसा

बचेगा सो हमारे नमक के काम श्रवेगा। फ़ीस के लिये बहुत दबाने से लड़के छोड़ बैठते हैं। फ़ीस वसूल न होने पर मास्टरों की तनख़ाह से काटलिया जाता है जो कम तनखाह पाने वालों को बहुत अखरता है।

स्कूल की जांच समाप्त होने पर मि० हार्डी गांव की ओर २ बातों की जांच करने लगे। पूछा यहां इस गांव में कोई पुस्तकालय भी है। कहा गया ये बेचारे इतने ग़रीब और मूर्ख हैं कि पुस्तकालय नहीं चला सक्ते। फिर साहब ने पूछा कि कोई अख़बार भी ये पढ़ते हैं? तब गांव के लोगों में से एक आदमी आगे किया गया उसने कहा मैं अभ्युदय में हार्डी साहब के बारे में पढ़ चुका हूं। हार्डी साहब ग्रामीणों की रुचि समाचार पत्रों की ओर देख प्रसन्न हुये। मि०-हार्डी से कहा गया गांव वाले अख़बारों के चन्दा के लिये रुपया नहीं बचा सक्ते। ये बेचारे अपने को बड़ा भाग्यमान् समझैं यदि वे ख़र्च वर्च दे साल में दो रुपया बचा सकैं जो आम तौर पर सस्ते से सस्ता समाचार पत्रों का वार्षिक मूल्य है। जो दो रुपये की बचत कर अख़बार खरीदैं उसी दो रुपये में अपने पहनने को धोती क्यों न मोल लें। इतने में विज़िटर्स बुक आप के पास लाई गई जिसपर उन्होंने एक लम्बा नोट लिखा। जिसका तात्पर्य यह था कि "स्कूल में दरकार चीज़ों की बड़ी कमी है, शिक्षकों का वेतन बहुत कम है, प्राथमिक शिक्षा के लिये गवर्नमेंट से उत्तेजना की कमी है" माडरनरिव्यू में हार्डी की जांच का और बहुत सा हाल दिया है हम इसे यहीं पर समाप्त करते हैं और इस्से पाठकों को मालूम हो गया होगा कि दिहातियों की कैसी बुरी दशा है।

## सूचना।

इस बार प्रेस की ढिलाई से देर हो गई पढ़ने वाले हमें क्षमा करेंगे आगे से ऐसा न होगा आगे के दो नम्बर हम उनकी सेवा में जल्द उपस्थित करेंगे। विशेष निवेदन यह है कि यह साहस हम उन्हीं पढ़ने वालों के भरोसे से कर गुज़रे हैं आशा है वे हमारी सहायता से मुख न मोड़ेंगे और जहां तक हो ग्राहक संख्या बढ़ाने में प्रयत्न से न चूकेंगे कि जिसमें ५०० ग्राहक हो जांय। बिना ५०० ग्राहक के यह चलेगा नहीं। न होगा तो हमें फिर तीन फ़र्मे का पत्र कर देना पड़ेगा। आगे बढ़ कर पीछे हटना भी कादरता है पर यह ग्राठकों ही के आधीन है कि वे हमें सम्हाललें "नहिं विद्या नहिं बाहु बल नहिं खरचन को दाम। ऐसे पतित पतंग की तुम पत राखो राम"—।

REGD. No. A. 808.

# हिन्दी प्रदीप

## मासिक पत्र।

शुभ सरस देश सनेह पूरित प्रगट ह्वै आनन्द भरै।
बचि दुसह दुरजन वायु सें मणिदीप समथिर नहिंटरै॥
सूझै विवेक विचार उन्नति कुमति सब यामे जरै।
हिन्दी प्रदीप प्रकाशि मूरखतादि भारत तम हरै॥

जिल्द ३० | फरवरी १९०८ | संख्या २

## विषय सूची।



पण्डित बालकृष्ण भट्ट सम्पादक और प्रकाशक के आज्ञानुसार पं० शीतलप्रसाद त्रिपाठी ने अभ्युदय प्रेस प्रयाग में छापा

सभायें पुस्तकालय और विद्यार्थियों तथा असमर्थों से अग्रिम २।।) समर्थों से ३।=) पिछले अङ्कों की पूरी जिल्द फी जिल्द मै पोस्टेज २) नमूने की कापी का =) बिना मूल्य किसी को न दी जायगी।

-:॥ श्री ॥:-

# हिन्दी प्रदीप

जिल्द ३० } फरवरी सन् १९०८ ई० { सं० २

## महाभारत के समय का भारत।

महाराज रामचन्द्र के समय से जब हम धर्मराज युधिष्ठिर के समय को मिलाते हैं तो देश की हर एक बातों में बड़ा अन्तर पाते हैं। यद्यपि युधिष्ठिर धर्म के अवतार माने गये हैं सत्य और साधुता आदि सद्गुणों का चित्र उनके चरित्र में व्यासदेव ने भरपूर उतारा है पर महाराज रामचन्द्र के अकृत्रिम सौहार्द आदि गुणों का लेश भी उस चित्र में न आ सका। श्रीरामचन्द्र का समय आर्य्यों की पुरानी सभ्यता और उन के समस्त सद्गुणों का सूर्योदय था किन्तु पाण्डवों का समय उस सभ्यता का मध्याह्न था। श्रीरामचन्द्र के समय आर्यों का उदय देश में पंजाब अवध या ब्रह्मावर्त और कुछ प्रान्त विहार या तिरहुत तक हुआ था। पाण्डवों के समय संपूर्ण भारतवर्ष में आर्य लोग फैल गये थे। अनार्य दस्यु या राक्षस रामचन्द्र के समय समस्त विन्ध्य के दक्षिण के देशों में बसे हुये थे। तथा बहुत बड़ा हिस्सा विन्ध्याचल के उत्तर का उन्हीं राक्षस और असुरों के अधिकार में था। मथुरा जो पाण्डवों के समय यादव वंशी क्षत्रियों की राजधानी थी जिसका वर्णन कवियों ने बड़े धूम धाम के साथ किया है लवण असुर के अधिकार में थी और मथुरा के आस पास का भू भाग सब उजाड़ पड़ा था। लवण भी विराध और रावण आदि राक्षसों की भांत आदमख़ोर था। आदमियों को मार कर खा जाता था

और जंगली मनुष्य था। शत्रुघ्न ने उसे मार कर मथुरा बसाया था। बक और हिडंब आदि राक्षस भी जिन्हें भीमसेन ने मारा है उनके आख्यानों से मालूम होता है कि बहुत से ऐसे मनुष्य मांस भक्षक पाण्डवों के समय तक कहीं २ बच रहे थे। बाल्मीकि के लेख से प्रगट है कि भरत जब चित्रकूट में श्रीरामचन्द्र से मिलने को चले हैं तब रास्ता साफ़ करने वाले बहुत से लोग कुदारी और फरुहा साथ लिये रास्ता साफ़ करने को उनके आगे चले हैं। पाण्डवों के समय श्रीकृष्ण रथ पर हस्तिनापुर से द्वारिका को गये हैं। जिन २ देशों से गुज़रे हैं उनके नाम दिये गये हैं। इससे सिद्ध है कि महाभारत के समय में इतनी सभ्यता लोगों में आ गई थी कि सड़क आदि का प्रबन्ध और टिकने को सरांय इत्यादि के ऋम पर कुछ बनावें। रामचन्द्र चित्रकूट से रामेश्वर तक सीता को खोजते हुये गये हैं सम्पूर्ण देश का देश सिंह बाघ आदि भयंकर शिकारी जानवरों से भरा था सैकड़ों कोस की दूरी पर अगस्त और सुतीक्ष्ण ऐसे दो एक ऋषियों का स्थान उन्हें मिला है। पाण्डवों के समय दक्षिण के ये सब देश आबाद हो गये थे अच्छे २ नगर और राजधानियां उनमें बन गई थीं। भोजकट ऐसे दक्षिण के कई नगरों के नाम भारत में पाये जाते हैं और दक्षिण के कई राजे महाभारत के युद्ध में कौरव और पाण्डवों की कुमक को आये हैं। युद्ध शिक्षा भी पहले पूर्णता को नहीं पहुंची थी रामायण में अधिकतर पर्वत की शिला और पेड़ों की डालियों से युद्ध कहा है महाभारत के युद्ध में कैसी २ व्यूह रचना व्यासजी ने लिखा है। रामचन्द्र के समय देश का देश उजाड़ पड़ा था केवल अयोध्या मिथिला आदि दो एक नगर थे महाभारत के समय सौ सौ पचास पचास कोस की दूरी पर एक २ स्वच्छन्द राज्य और राजधानियां हो गई थीं। जिनमें बड़े २ प्रबल शक्तिशाली अस्त्र शस्त्र विद्या कुशल राजा राज करते थे। कृषि और वाणिज्य की भरपूर तरक्की थी लोग सब भांत मुदित प्रसन्न हृष्ट और पुष्ट थे धन संपत्ति से देश खचाखच भरा था। बौद्धों का ज़ोर भी उस समय तक नहीं होने पाया था। ऋषियों का चलाया हुआ शुद्ध वैदिक धर्म पर लोग चल रहे थे। चारो वेद और धनुर्वेद आदि उपवेद तथा आर्य ग्रन्थ का

पठन पाठन तीनों वर्ण के लोग करते थे, अब के समान तब कोई विदेशी भाषा देश में प्रचलित नहीं हुई थी। सब लोग बड़े ही पवित्रचरित्र के थे इससे Litigation क़ानूनों में इस क़दर हिन्दी की चिन्दी नहीं होने पाई। रामचन्द्र का समय सभ्यता का सूर्योदय अर्थात् आदिम काल था इससे मालूम होता है कि सभ्यता के बढ़ने से बहुत तरह की बुराइयों का अंकुर भी उस समय तक नहीं जमा था। सभ्यता के बढ़ने से सब भलाई ही हो सो नहीं बहुत सी बुराइयां भी फैल जाती हैं। लोगों में दमन तब विशेष था। लोभ, मोह, मद, मात्सर्य को प्रजा में फैलने का अवकाश ही तब न था। इसीसे रामचन्द्र भरत को राज देते थे पर भरत ने उसे स्वीकार न किया। युधिष्ठिर के समय सभ्यता का मध्य दिन था और सभ्यता अपनी अन्तिम सीमा तक पहुंच चुकी थी इसीसे लोभ आत्म सुख अभिलाषा और आपस की स्पर्द्धा इतनी बढ़ गई कि राज के लिये भाई २ कट मरे। पर उद्यम, साहस, धैर्य, बल, बीर्य्य, स्थिर अध्यवसाय आदि पौरुषेय गुणों में अन्तर नहीं पड़ा था। बल्कि वे गुण बराबर बढ़ाते ही गये। बहुत तरह की नई २ विद्या और कितनें तरह के नये २ अस्त्र शस्त्र तथा शिल्प विज्ञान भी इस समय सभ्यता के बढ़ने के साथ ही साथ बढ़ते गये और बराबर बढ़ते जाते । पर होन हार अमिट है। महाभारत का युद्ध ऐसा सर्वनाशकारी हुआ कि भारत के पुनरुत्थान का सितारा क्रमशः डूबता ही गया। आस पास के देश जो यहां के चक्रवर्ती राजाओं के बाहुबल से सदा दबे रहते थे और कभी उभड़ने का मन भी न करते थे पीछे वे ही प्रान्त वर्ती देश के लोग और वहां के सम्राट् राजा जैसा सिकन्दर इत्यादि प्रबल पड़ हिन्दुस्तान पर चढ़ाई करने लगे और उलटा भारत ही को दबाने तथा यहां के लोगों को अपना बशंवद करने में कृतकार्य हुए।

महाभारत के युद्ध का धक्का यद्यपि आस पास के देशों को भी कुछ न कुछ लगा पर वे देश प्रबलता में सब भांत हम से आगे बढ़ते ही गये। टरकी, ईरान, परशिया, तुरकिस्तान तातार आदि देश महाभारत के युद्ध के उपरान्त बौद्धों के समय तक भारत के आधीन थे। क्योंकि

क्षेमेन्द्र ने अवदान कल्पलता में बहुत से ऐसे नाम दिये हैं जहां बुद्धदेव ने जाकर अपना मत फैलाया और बुद्ध धर्म की दीक्षा लोगों को दी बहुधा वे नाम उन्हीं देश के नगरों से मिलते हैं। ऐसा मालूम होता है कि इरान से सिन्धु नदी के तट तक आर्यों के निवास की मुख्य भूमि थी। आतश परस्त पारसियों में जैसा आर्यों का रक्त संचालित देख पड़ता है वैसा हम हिन्दुओं में नहीं है। या, यों समझिये एक ही बाप के जैसे दो पुत्र अलग २ दो ठौर जा बसैं वैसा ही ये पारसी अपनी धर्म पुस्तक ज़िन्दावस्ता लै सर्वथा अलग हो गये यहां तक कि वैदिक धर्मावलम्बी आर्यों ने उनसे कोई सरोकार न रक्खा। वेद के अनुसार चलने वाले आर्यों का दस्यु और असुरों के साथ घिस्ट पिस्ट होने से उनके चेहरे का रंग और देह के प्रत्यङ्गों के संगठन में कुछ थोड़ा अन्तर पड़ गया। पर मस्तिष्क की लोकोत्तर शक्ति उनमें जैसी की तैसी बनी रही। पीछे इन्हीं वैदिक आर्यों ने इन दस्यु और असुरों को भी आर्य बना लिया अब इस समय समस्त हिन्दू जाति अपने को आर्य वंशी कहती है। अस्तु इन अप्रासंगिक बातों का ज़िकिर यहां इस समय छेड़ना व्यर्थ है अतः प्रकृतमनुसरामः—

इन आर्यों में मस्तिष्क की शक्ति प्रबल है सो इससे सिद्ध है कि ये जहां कहीं एक दो भी होंगे वहां समस्त जन समूह के शिक्षक नेता या प्रधान बन बैठेंगे। दण्डक का बड़ा हिस्सा जनस्थान जो किसी समय इन्हीं दस्यु असुर और राक्षसों की वास भूमि थी वहां आर्यों में एक अगस्त जा बसे ये पर अगस्त सम्पूर्ण दक्षिणात्य दस्यु और राक्षसों के पूज्य हुये रामचन्द्र को भी रावण के जीतने में अगस्त से बहुत सहायता मिली। ऐसा ही सुग्रीव जामवन्त और हनूमान आदि जिन को बाल्मीकि ने रीछ और बन्दर लिखा है सब के सब उन्हीं दस्युओं के फिरके के रहे होंगे रावण से और इनसे फरक केवल इतना ही था कि ये आदमखोर न थे। दक्षिण के देशों में धरती पहाड़ी होने से अन्न कम पैदा होता था फल और कन्दमूल विशेष। सुग्रीव और जामवन्त आदि कन्दमूल तथा फल खाकर अपनी ज़िन्दगी काटते

थे इसी से ये रीछ और बन्दरों की कोटि में शामिल कर लिये गये रामचन्द्र महाराज शुद्ध आर्यवंशी थे उन्होंने ने इन रीछ और बन्दरों को अपना अनुयायी बनाय उनसे अपना काम निकाला रावण को जीतने में और सीता को रावण के क़ैद से निकाल लाने में श्रीरामचन्द्र को इन्हीं रीछ और बन्दरों से बड़ी सहायता मिली। ऐसाही पाण्डवों ने भी घटोत्कच आदि कई राक्षसों को अपने में मिलाय उन्हें आर्य बना लिया। विराट राजा के यहां कीचक जिसे भीमसेन ने मारा था उन्हीं दस्युओं में था। इतिहासों को ख़ूब टटोलो तो पता लग जायगा कि अभी हाल के ज़माने तक यह बात प्रचलित रही कि आर्य जातिवाले इन दस्यु वंशियों को बराबर अपने में मिलाते उन्हें दस्यु और किरात से आर्य करते गये। मुसलमानो के हमलों के उपरान्त जित जाति Conquered Nation हो जाने से वह जोश और गरमी इनमें से निकल गई। दूसरी जातिवालों को अपने में क्या मिलावेंगे ये खुद दूसरों का मज़हब कुबूल कर अन्य जातिवाले होते जाते हैं। हज़ारों लाखों हिन्दू मुसलमान हो गये और अब क्रिस्तान होते जाते हैं। इसी से बराबर हम इस बात को कह रहे हैं कि जब तक Life पौरुषेय गुण विशिष्ट जीवन और जोश तथा Nationality जातीयता का भाव किसी क़ौम में क़ायम है उस समय जो कुछ उसके मस्तिष्क से निकलेगा या जो कुछ काम वह करेगा सबों में उत्तेजना रहेगी दास हो जाने पर जो बात कोसों दूर हट जाती है। मुसलमानों के राजत्व काल में जो ग्रन्थ बने अथवा जो रीति या क्रम अपने लोगों में प्रचलित किया गया सब त्याज्य हैं। उन ग्रन्थों को मानने या उन रीति या क्रम के अनुसार चलने से हम स्वराज्य के योग्य कभी नहीं होंगे।

अस्तु तो निश्चय होगया कि महाभारत के युद्ध का समय भारत तथा आर्यों के बल और वीर्य; समृद्धि और बैभव; बुद्धि तत्व; या सद्विचार प्रणाली; तथा स्थिर अध्यवसाय, आदि की प्रौढ़ता का था यदि वही हालत हिन्दुस्तान की अब तक क़ायम रहती तो तमाम दुनियां का एकाधिपत्य इस समय इसे प्राप्त हो जाता किन्तु अफ़सोस देश में सम्पत्ति

और वैभव बढ़ने के साथ ही साथ परस्पर की स्पर्द्धा द्वेष और आत्म सुखाभिलाष उस समय इतना अधिक बढ़ गया कि जिससे हमारे अधः पात के बीज का बोना बहुत सहज होगया । जिस समय यह युद्ध हुआ है उस समय न्हिदुस्तान का कोई कोना या प्रदेश नहीं बचा था जहां सब तरह की पूर्ण जागृति न रही हो । इस युद्ध की हेतु भूत या प्रधान कारण कृष्ण महाराज की कुटिल पालिसी थी । भारत का कोई भाग न बच रहा था जहां इनकी पालिसी की दुरभिसन्धि का असर न पड़ा हो । कौरव और पांडव दो इस युद्ध के प्रधान नेता तो थे ही किन्तु उस समय के समस्त छोटे बड़े राजे महाराजे इस युद्ध के किसी न किसी दल में आ शरीक हुए थे । न केवल हिन्दुस्तान ही तिब्बत तातार बलख बुखारा और चीन तक के नरपाल युद्ध में कट मरे। जो भूपाल स्वयं न आये उन्होंने अपनी बहुत सी सेना और युद्धोत्सा ही वीरों को लड़ने के लिये भेजा । कुछ ऐसा भी मालूम होता है कि इस समय वीरता का दर्प इतना लोगों में आ समाना था कि वे अपने भुजा का बल दिखाने का मौका ढूढ़ रहे थे ।

यद्यपि कंस काशिराज चेदी का राजा शीशुपाल और शाल्व आदि बहुत से राजाओं का संहार कर उस समय के युद्धोत्साही वीर क्षत्रियों में कृष्ण महाराज महा मान्य हो चुके थे । इनके लिये सब से बड़ी बात यह हो चुकी थी कि जरासन्ध जो उस समय एक तिहाई हिन्दुस्तान अपने अ-धिकार में किये था और जो कई बार इन्हें हरा चुका था उसका राज नीति के द्वारा भीम से बध कराय मगध की बड़ी भारी सलतनत तोड़ चुके थे फिर भी महाभारत के युद्ध में वीरता और युद्धोत्साह का समुद्र उमड़ रहा था । ऐसा मालूम होता है उस समय के राजा लोग और क्षत्रियों का दो दल था । एक वे थे जो स्वयं कुलीन होकर कृष्ण महाराज को सर्वश्रेष्ठ मान बैठे थे । दूसरे दल के वे थे जो सब भांत इनके विपक्षी थे। इनको अपने से किसी बात में उत्कृष्ट नहीं मानते थे । उन्हीं को असुर और दैत्य की पदवी दी गई । कृष्ण को क्षत्रियों के संक्षय के कलंक से बचाने को पृथ्वी का भार उतारने का प्रतिष्ठा पत्र उन्हें दिया जाता

है किन्तु ऐसे भार उतारने को कौन सराहेगा जिससे ऐसा भारी धक्का लगा कि देश फिर आज तक न पनपा। वेही अलबत्ता सराहेंगे जिनको देश के दुर्गति की चोट का असर बिलकुल नहीं पहुंचा जो स्वार्थ की मूर्ति और आत्म-सुख रत हैं। इस्मे सन्देह नहीं श्रीकृष्ण भगवान् अपनी असाधारण लोकोत्तर बुद्धि से इस घोर संग्राम का जो कुछ परिणाम हुआ सब समझे हुये थे चाहते तो कौरव और पाण्डवों में मेल कराय भारत को इस महान संक्षय से बचा देते पर न जानिये क्यों उनकी यह त्रिकाल दर्शिता हमारे लिये सर्व नाशकारी हुई। यदि यह कहा जाय कि कृष्णचन्द्र ने यह सब निज बंश यदुकुल की प्रतिष्ठा बढ़ाने को किया सो भी नहीं हुआ अन्त में सब के सब यादवकुल वाले आपस में लड़ कट मरे। इससे सिद्ध होता है कि त्रिकालज्ञ भगवान् श्रीकृष्ण ने यह सब स्वार्थ बुद्धि से नहीं किया अपिच यह दरसाया कि प्रत्येक देश और जाति के ह्रास और वृद्धि में Law of Compensation क्षति या हानि पूरक एक प्राकृतिक नियम सब ओर संसार भर में व्याप रहा है। जो कभी इस धरातल के एक ही भूभाग या एक ही जातिवालों को चाहे वे कैसे ही गोरे से गोरे या काले से काले क्यों न हों बराबर उन्नति या अवनति की दशा में नहीं रहने देता बरन चक्र नेमिक्रम अर्थात् रथ की पहिया सा ऊंचा नीचा हुआ करता है।

"नीचैर्गच्छत्युपरिच दशा चक्रनेमिक्रमेण"। औ भी
"संयीगा विप्रयोगान्ताः पतनान्ताः समुच्छ्रयाः"।

संयोग के साथ वियोग लगा रहता है। मनुष्य ऊंचा तभी तक होता जाता है जब तक गिरता नहीं। तो किसी को अपनी तरक्की का घमण्ड नितान्त व्यर्थ है। महाभारत का युद्ध मानों इस तरह के दर्पान्धों को शिक्षा दे रहा है कि तुम चार दिन की चांदनी के समान अपनी वर्तमान बढ़ती का घमण्ड न करो तुम भी एक दिन गिरोगे।

———

# दल का अगुआ कैसा हो ?

दल या जमात का अगुआ सदा एक होता है दो चार नहीं जहां दो चार अगुआ बनते हैं और वे अपनी प्रतिष्ठा और अपनी राय सब के ऊपर रक्खा चाहते हैं वह जमात छिन्न भिन्न हो जाती है। सब लोग तितिर बितिर हो उस दल को क़ायम नहीं रक्खा चाहते। इसी बुनियाद पर कहा गया है:—

"सर्वे यत्र विनेतार: सर्वे पण्डित मानिन: ।
सर्वे महत्व मिच्छन्ति तद्वृन्द मवसीदति" ॥

जहां सभी अगुआ बनते हैं, सब लोग अपने को बुद्धिमान मानते हैं, एक ही आदमी की अक़िल पर रहनुमा नहीं हुआ चाहते, सबी अपना २ बड़प्पन चाहते हैं वह जमात मुसीबत में पड़ जाती है। कदाचित् इसी बात का खयाल कर किसी ने कहा है "न गणस्याग्रतो गच्छेत्" किसी दल का अगुआ न हो अर्थात् पहले किसी बात का नमूना आप न दिखलावे इस लिये कि उस काम के बन जाने पर नमूना बनने वाले को विशेष लाभ नहीं और जो उसके नमूना दिखलाने से काम बिगड़ गया तो सब लोग उसी की फ़ज़ीहत करने लगते हैं। पर यह तो क्लीवता और नामर्दी है सैकड़ों बुराइयां हमारे समाज में इसी से नहीं मिटाये मिटतीं किसी को इतना साहस नहीं है कि पहले खुद कर दिखावे। अच्छे पढ़े लिखे लोगों में इतनी हिम्मत नहीं है तब अपढ़ बेचारों का क्या कहना ? जैसा बाल्य विवाह के संबन्ध में किसी को साहस नहीं होता कि रजोदर्शन के उपरान्त कन्या का विवाह करने में नमूना बने। कान्फ़रेन्स और कमेटियों में बहश और विवाद बहुत करेंगे पर करके कुछ न दिखावेंगे। सच मानिये बाल्य विवाह की जड़ कभी नहीं कट सकती जब तक कन्या में रजोदर्शन की क़ैद क़ायम है। अस्तु अब यहां पर विचार यह है कि अगुआ कैसा होना चाहिये। अगुआ में सब से बड़ी बात यह है कि वह अपने मन से कोई काम न कर गुज़रे जब तक सब की राय न ले ले और सबों का मन न टटोल ले।

दूसरे उसमें शान्ति और गमखोरी की बड़ी ज़रूरत है। जिस काम के बनने पर उसका लक्ष्य है उस पर नज़र भिड़ाये रहैं दल में कुछ लोग ऐसे हैं जो उसके लक्ष्य के बड़े विरोधी हैं और वे हर तरह पर उस काम को बिगाड़ा चाहते हैं। अगुआ को ऐसी २ बात कहेंगे और खार दिलावेंगे कि वह उधर से मुंह मोड़ बैठे और क्रोध में आप सर्वथा निरस्त हो जाय। ऐसी दशा में यदि उसमें शान्ति और गमखोरी न हुई तो बस हो चुका काहे को वह उस काम के साधने में कभी कृतकार्य होगा। फिर अगुआ अपने सिद्धान्त का दृढ़ और मुनसिफ़ मिज़ाज हो। कहावत है "सुने सब की करै अपने मन की" क्षुद्र से क्षुद्र का भी निरादर न करे अपने मन्तव्य के विरुद्ध राय देने वालों को ऐसे ढंग से उतार लावे की "न साप मरे न लाठी टूटे" सिवा इसके अगुआ को सर्व प्रिय हर दिल अज़ीज़ होना चाहिये जब तक सब लोग उसे प्यार न करेंगे और चित्त से उसका आदर न करेंगे तब तक उसके कहने को स्वीकार कैसे कर सकते हैं। किसी का आदर तभी होता है जब मन में उसको रहने की जगह हो।

अगुआ के लिए चरित्र का शुद्ध होना बड़ी भारी बात है। जो चरित्र के शुद्ध नहीं हैं जिनका चाल चलन दगीला है वे कैसे दूसरों के चित्त पर असर पैदा कर सक्ते हैं। विशेष कर सामाजिक मामिलों में जो समाज का अग्रणी हो उसे चरित्र का पवित्र होना ही चाहिये। जैसा धर्म सबम्न्ध में हमारा अगुआ गुरू होता है बहुधा गुरू वही किया जाता और माना जाता है जिसका चरित्र कहीं से किसी अंश में दूषित न हो "वर्णानां ब्राह्मणों गुरूः" चारो वर्ण में ब्राह्मण गुरू या अगुआ है तो निश्चय हुआ कि ब्राह्मण निर्दूषित चरित्र हों। इस समय ब्राह्मण जो दूषित चरित्र होगये तो और लोगों को उन पर आक्षेप करने का मौका मिल गया है। और २ प्रान्तों की हम नहीं कहते हमारे यू० पी० में इस समय सबों की रुचि के समान अच्छे राजनैतिक अगुआ की बड़ी ज़रूरत है। हमारे नई उमंग वाले बिना किसी अगुआ के बिलबिला रहे हैं कोई हांथ पकड़ उन्हें चलाने वाला नहीं मिलता।

शान्ति प्रिय छोटे लाट श्रीमान् हुयेट साहब अपने प्रान्त में शान्ति बहुत चाहते हैं उन्हें इस प्रान्त के अगुआओं को धन्यवाद देना चाहिये यह इन अगुआओं की करतूत है कि देश में अशांति नहीं फैलने पाती और अगुआ लोग ऐसी हिकमत से काम कर रहे हैं कि पंजाब और बंगाल की तरह यहां अब तक अशांति ने कदम नहीं रक्खा। पर हमारे अगुआ दोनों ओर से च्युत हैं। "दोनो दीन से गये पांड़े, न रहे भात न रहे माड़े" समय पर जहां उचित समझते हैं गवर्नमेंट की ओर से अनीति समझ सरकार को टोंक देते हैं और उस अन्याय के दूर करने को चिताते और न्याय मांगते हैं इससे गवर्नमेंट में कद्र नहीं पाते। ईधर गरम दल वाले उन्हें सरकार का खुशामदी और खैरखाह कह बदनाम किये हुये हैं। उन्हें उचित रहा दोनों को खुश रखते और दोनों से सूर्खरूई पाते। नहीं तो प्रजा की ओर से सुर्खरुई तो बहुत आवश्यक थी। निःसन्देह अगुआ होने का काम बड़ा टेढ़ा और बिना सिंहासन का राज्य है। राजा का अटल और सुस्थिर राज्य तभी होता है जब सबों को प्रसन्न करता हुआ प्रजाकी मनोरंजन हो। वैसाही अगुआ का रोब और दबदबा तभी रहेगा जब वह सबों के मनकी करेगा नहीं तो वह एकसे मीठा दूसरे दलसे खट्टा बना रहेगा और जिस काम को करना चाहता है कृतकार्य उसमें कभी न होगा।

---

## जापानी जातीय जीवन के उपवीत समय की पांच आज्ञायें

( ठाकुर गदाधर सिंह लिखित )

जापानी सेना रूसियों पर बराबर विजय प्राप्त करती रही। युद्ध के आरंभ में कौन विदेशी अनुमान करता था कि ऐसा संभव होगा? रूस निःसन्देह संसार में एक सर्वश्रेष्ठ महाराजा हैं। नहीं बल्कि वह इस से भी अधिक "जम्बला बोग" पार्थिव परमेश्वर हैं। उनके विरुद्ध खड़े होकर—जापान, एक एशियायी भुनगा, भला कभी जय प्राप्त करने का स्वप्न भी देख सकता है?

विदेशियों का यही अनुमान था। "पूर्वी संसार, पश्चिमी जातियों की भोग्य भूमि है" यही यूरोपियन जातियों का एक प्रकार सगर्व विश्वास हो चला था। तभी तो पहिले धर्म प्रचार के मिस से जेशुयिट पादरी लोग पधारे पीछे अबाध्य व्यापार का टोकरा लेकर सारा यूरोप अपने अपने वास्ते बन्दर पकड़ने दौड़ा था ?

सो यूरोपियन जातियों के "व्यापार का बाज़ार जापान" लड़ाई में मुकाबिला करने के वास्ते महाराजाधिराज सम्राट् रूस के सामने खड़ा होकर जीत जायगा ? यूरोप की निगाह में यह एक अनहोनी बात थी। परन्तु दुनियां ने प्रत्यक्ष देखा कि जापान आरंभ से ही विजयी होता आ रहा है चेमलपू सागर संग्राम में उसने विचित्र कौशल दिखलाये, पोर्टआर्थर की समुद्र की लड़ाई देख संसार दंग रह गया।

परन्तु इतने पर भी राय रूसियों की तरफ़ ही रही थी। कहा जाता रहा कि रूसी तय्यार नहीं थे। समुद्री शक्ति में जापान ने इंगलिस्तान की नक़ल करके कुछ सीख लिया है। इसी से समुद्री लड़ाइयों में कामयाब रहा। संभव नहीं कि मैदान की लड़ाई में रूसी शिक्षित सेना समूह के मुकाबिले मुट्ठी भर जंगली जापानी कुछ भी ठहर सकें।

पर पालू तट की लड़ाइयों ने दुनियां का यह शुबहा भी दूर कर दिया। और जब "लियावयाङ्ग" के महा मोरचे भी रूसियों को लड़ाई में हार कर अगत्या छोड़ने पड़े तब तो यूरोपियन शक्तियों की अंगुली दांतों तले अनायास ही चली गई और मालूम हो गया कि जापान एक "भुनगा" नहीं वरन एक जीवित जाति और एक एशियायी शक्ति है। उसके सिपाही शिक्षा, आज्ञाकारिता और सहन शक्ति में रूसियों के न केवल बराबर वरन उन से अधिक हैं।

इतना होने पर अब यूरोपियन सम्मतियां व्यक्तिगत आलोचनाओं पर आन उतरीं। अमुक सेनापति (जनरल) के युद्ध प्रबन्ध में यह चूक हुई, अमुक ने उस प्रबन्ध से मैदान मारा, इत्यादि।

परन्तु जापानी राय बहादुर लोग कहते हैं कि ये सब आलोचनायें ठीक तो हैं और ध्यान देने योग्य भी हैं, परन्तु हैं वे सब केवल गौण

मुख्य नहीं हैं यूरोपियन लोग भले ही हार जीत का भार सेनापतियों के माये मढ़ें परन्तु जापान व्यक्तिगत विश्वास के भुलावे में नहीं आ सकता। उसका विश्वास, उसके प्रबन्ध, उसकी प्रस्तुति और उसकी उत्तर देने की कर्तव्यता का भार सार्वजनिक है व्यक्तिगत कदापि नहीं। जापान के सम्पूर्ण सेनापतियों, सारे सैनिकों और समस्त प्रजा की इच्छा एक है, कर्तव्य एक है, सब के सिर पर बराबर भार है, और उत्तरदेनेको कर्तव्यता भी सब की समान है। कृतकार्यता का यही एक मुख्य कारण है। सम्पूर्ण सेना एकही सूत्र से बंधी हुई है और वह "सूत्र संस्कार" (यज्ञोपवीत संस्कार ?)—अपनी जातीय सेना का सूत्र संस्कार—जिसे महाराजा मिकाडो मत्सुहितू ने तारीख़ ४ जनवरी १८८२ ईस्वी को किया था।

जापानी बड़े गौरव के साथ कहते हैं कि हमारी फौज़ों में वही संस्कार समय की पांच आज्ञायें पूर्ण रूप से अपना स्वरूप सर्वत्र दर्शा रही हैं।

सो यदि सचमुच ही जापानी सेना का साम्प्रतिक आश्चर्य्य चमत्कार उन पांच मंत्रों के ही प्रभाव से हो तो वे मन्त्र निःसन्देह सबों के साधन और आराधना के योग्य हैं।

उपरोक्त मन्त्र अपनी साधन के क्रम समेत तारीख़ ४ जनवरी १८८२ ई० की राजाज्ञा से इस प्रकार जापानी सेना के प्रति उतरे थे।

"इस देश जापान की सेना सनातन समय से—पुश्तहा पुश्त महाराजा की प्रधान आज्ञा के आधीन चली आई है ? ढाई हज़ार वर्षों से अधिक समय व्यतीत हुआ जब कि महाराजा "ज़िम्मू" ने मध्य देश की कतिपय जंगली जातियों को दबा कर अपना राज सिंहासन दृढ़ किया था। वह संग्राम स्वयम् महाराजा संचालित था। और उस समय की सुविख्यात शूरवीर "ओटोमो" और "मनोनोबी" जातियों ने समर में योग दिया था। उसके बाद भी प्रायः सर्वदा ही लड़ाइयां होती आई हैं। और सदाही सेना संचालन महाराजा के हांथ में रहा है। कभी कभी लड़ाइयों का प्रधान पद महाराणी या राजकुमार के हांथ में दिया गया है परन्तु अन्यथा कभी नहीं।

दरमियानी समय में देश का सम्पूर्ण प्रबंध—चाहे फौज़ी अथवा मुलकी—सब चीन देश की प्रथा के अनुसार चलाया गया था। सेना सम्बन्धी छः प्रधान भाग ( Garrison ) नियत किये गये थे। और दो मुख्य स्थान घोड़ों की तय्यारी के लिये। तथा सीमा प्रान्तों पर रक्षक दल (Frontier Guards) स्थापित किये गये थे। सेना का प्रबंध और विभाग इस प्रकार बड़ी उत्तमता का हुआ था। परन्तु यह सब केवल कागज़ों ही पर रह गया।

बहुत काल से शान्ति सुख का भोग करते करते हमारे देश की सैनिक योग्यता का प्रायः विनाश सा हो गया। किसानों और योद्धाओं की दो अलग अलग जातियां बन गईं।

( पाठक ! स्मरण करें, जातीयता के लिये जातियों के विभाग सदा हानिकारक होते हैं। )

योद्धाओं की जाति जो देश में "बुशी" के नाम से विख्यात है उसका पेशा सिपाह गरी बन गया। और उसी जाति के मुखिया लोगों ने अपने अपने अलग अलग जत्थे क़ायम कर लिये और वे ही धीरे धीरे सेनाओं के संचालक जनरल बन बैठे। देश की संचालक शक्ति इस प्रकार उनके हाथों में क़रीब सात सौ वर्षों तक रही।

यह कदाचित परमेश्वरी इच्छा थी ! मानव शक्ति से उसका पलट जाना कठिन था। परन्तु उसके कारण जापानी जाति की राज्य प्रथा मे बहुत बड़ी निर्बलता आ गई थी। हमारे पूर्वजों की स्थापित की हुई जातीय राज्यप्रणाली अस्तव्यस्त हो गई थी।

"कोका" राजत्व काल ( सन् १८४४ ई० ) से "केयी" राजत्व काल ( सन् १८४८ ) तक "तोकू गावा" शोगन का समय बड़ी निर्बलता का समय आया। वह समय अधिकन्तु इस कारण बड़ा नाज़ुक था कि विदेशियों की दरख़ास्तें बराबर, पयदर पय, देश में आकर व्यापार करने की गुज़र रही थीं॥

इस दशा को देखकर हमारे पितामह महाराजा "निन्को" को बड़ी चिन्ता उत्पन्न हुई थी। वह चिन्ता हमारे पिता महाराजा "कोमी" के समय में और भी बढ़ गई थी।

हम को भी वैसे ही अवस्था मे राज सिंहासन पर बैठना पड़ा। परन्तु सौभाग्य वश थोड़े ही काल में समझदार शोगन "तोकूगावा" ने अपने सम्पूर्ण अधिकार हमारे हाथों में दे दिये और अन्यान्य राजाओं ने भी शोगन का अनुकरण किया।

इस प्रकार एक वर्ष के भीतर ही सम्पूर्ण देश एक सूत्र में आबद्ध हो गया। हमने फिर से सनातन राज प्रथा का अवलम्बन किया। इस सम्पूर्ण काया पलट का प्रधान कारण यही हुआ कि हमारे देश के सभी लोग अवस्था की असलीयत को जान गये हैं। और भले बुरे की पहिचान स्वयमेव कर सकते हैं।

हम को राज सिंहासनारूढ़ हुए पन्द्रह वर्ष व्यतीत होते हैं तब से सैन्य संस्कार में हमने विशेष मनो योग दिया है। और जलस्थल दोनों प्रकार की सेनाओं को हमने इस प्रकार पर बनाया है कि जिसमें हमारा देश संसार में नामवर हो। सम्पूर्ण सेना अब हमारे आज्ञाधीन है। समय समय पर सेनापति लोग हमारे द्वारा नियुक्त किये जा कर सैन्य संचालन करेंगे। परन्तु प्रधान अधिकार सेनाओं का सदा हमारे ही हांथ में रहैगा।

हमारी इच्छा है कि सब लोग इस बात को जान लेवैं, स्मरण रक्खें, और अपनी सन्तान को भी बतला देवैं कि जापान की जलस्थल सेना का कमान्डर इन चीफ़-सेनापति-स्वयम् महाराजा है। और सेना का प्रत्येक सिपाही अपने उसी सेनापति का निकट तर सम्बन्धी है।

स्मरण रहे कि देश फिर कभी किसी प्रकार के आलस्य में पड़कर अपने इस सम्बन्ध को कदापि न भूलैं।

हम तुम्हारे सेनापति हैं। हमारा भरोसा प्रत्येक सैनिक पर अलग अलग और एक साथ ठीक वैसा ही और उतना ही है जैसा कि अपने

निज हांथों पर। हमारी इच्छा है कि तुम भी हमारे साथ वैसाही निजका सम्बन्ध जोड़ो जैसा अपने निज शिर का हांथों के साथ होता है। जिस से हमारे परस्पर सहभाव, सचाई, विश्वास और भरोसा सदा वैसे ही स्थिर रहें जैसा कि शरीर में प्राण रहते हांथ और शिर के बीच रहता है।

हम अपने कर्तव्य पालन कर सकेंगे या नहीं, यह नितांत इस बात पर निर्भर है कि तुम अपने कर्तव्य भली भांति पालन करते हो या नहीं!

यदि हमारा देश दूसरी जातियों के समक्ष उच्च स्थान अधिकार न कर सके तो हमारी इच्छा है कि तुम सब लोग हमारे साथ दुःख करो और दर्द शरीक़ होओ।

और यदि देश का रुतबा आला हो जाय तो हम भी तुम्हारे साथ ही साथ उसके फलों के भागी और भोगी बनेंगे।

अतएव अपने कर्तव्य पर दृढ़स्थिर रहो और अपने देश की रक्षा में हमारी सहायता करो। परिणाम इसका अवश्यमेव जातीय प्रताप की वृद्धि और देश के नामवरी की बढ़ती निश्चित समझो।

हमको तुमसे इतना ही कहना नहीं है। हम पांच मंत्र और तुमको उपदेश करेंगे। यथाः—

(१) सैनिक का प्रधान कर्तव्य अपने राजा और अपने देश की "वफ़ादारी" है। संभव नहीं है कि कोई आदमी जिसने इस देश जापान में जन्म ग्रहण किया है वह स्वदेशानुराग में तनिक भी कम हो। परन्तु सिपाही में इस (स्वदेशानुराग) की मात्रा बहुत चढ़ी बढ़ी होनी चाहिये। क्योंकि जिस सिपाही में स्वदेशानुराग की मात्रा ज्वलन्त न हो वह देश की सेवा के अयोग्य होगा। बिना स्वदेशानुराग के आदमी कठपुतली की भांति होगा चाहे उसकी शिक्षा दीक्षा और क़ाबलियत लियाक़त कितनी ही चढ़ी बढ़ी क्यों न हो। ऐसे ही, खूब सीखे हुए और सैनिक ज्ञान विज्ञान (Military art and Science) के जानने वाले आदमियों की सेना जिसमें स्वदेशानुराग और वफ़ादारी न हो वह बिना प्राण के शरीर की भांति है।

देश की रक्षा और उसका नामवर उच्चाधिकार संपूर्ण रूप से हमारी सैनिक शक्ति पर निर्भर करता है।

सो जापान के देश और जाति का भाग्य तुम्हारी ही उत्तमता अथवा अधमता के आधीन है।

अतएव तुम्हारा धर्म है कि अपने कर्तव्य पालन में दृढ़ रहो और न तो सामाजिक बन्धन और न कोई राजनैतिक विचार अथवा मत मतान्तर सम्बन्धी भावनायें तुम्हारे कर्तव्य पालन के मार्ग में कोई रुकावट कदापि डाल सके। सदा स्मरण रहे कि "कर्तव्य" का भार बड़े पर्वत के बोझ की अपेक्षा भी बहुत गरू होता है।

(पाठक! हमारे श्रीकृष्णचन्द्रजी ने भी अपने ग्वाल वालों की जातीय सेना का संग्रह करके उनको यही उपदेश दिये थे। और गोवर्द्धन "भूवृद्धि" राज्य की वृद्धि और संग्राम के पहाड़ रूपी महाकर्तव्य को सब की सहायता से एक अंगुली पर उठा लिया था।)

कर्तव्य के सामने मौत इतनी हलकी है जितना कि एक छोटे पक्षी का पङ्ख।

कर्तव्य की अवहेलना से अपने उज्वल नाम को संसार के सामने कभी मैला न होने दो।

(२) सिपाही को अपने चलन और व्यौहार में सदा नम्र और आज्ञाकारी होना चाहिये।

सेना में प्रबन्ध और संचालन के अभिप्राय में ओहदे नियत होते हैं। ये बड़ाई छोटाई के विचार में नहीं किन्तु सैन्य संचालन और कार्य्य विभाग के वास्ते बनाये गये हैं।

ये ओहदे "फील्ड मार्शल" से लेकर "प्राइवेट" और "टलूजाकट" तक होते हैं। एक ही ओहदे में बहुत से दरजे भी होते हैं। सीनियर-ज्यूनियर का भी ध्यान रक्खा जाता है।

इसका तात्पर्य्य यही है कि सेना के प्रत्येक व्यक्ति का ध्यान हर एक के मान सन्मान और परस्पर सद्भाव और आज्ञाकारिता में प्रत्येक बना रहें।

जूनियर को चाहिये कि अपने से सीनियर की आज्ञा का अनादर कभी किसी अवस्था में न करे।

जूनियर को सीनियर से आज्ञा लेना चाहिये। उस आज्ञा को याद रक्खो—सीढ़ी सीढ़ी उतरते हुए हमारे निज मुख से निकली हुई आज्ञा-ही समझना चाहिए।

सेना सम्बन्धी प्रत्येक आज्ञा राजाज्ञा है और सेना का प्रत्येक व्यक्ति अपने अधिकार के अनुसार राज सत्ता सम्पन्न है।

(पाठक! इसी से तो हिन्दुस्तान में सैनिक का नाम राजपूत राजा का बेटा, रक्खा गया है। हां हां। तलवार धारी मात्र को राजपूत कहलाने का अधिकार प्राकृत है। और धिक्कार है उन लोगों को जो ताती बयार की लपट मात्र से भी भय भीत होकर आंचल ओट मुंह छिपाते हुए 'राजपूत' राजपूत' की टर्र हांकते हों।)

ऊंचे दरजे के अफ़सरों को कभी किसी अवस्था में भी तेज़ मिजाज़ी नहीं करना चाहिये। और न कभी किसी तरह का घमंड या बड़ाई छोटाई दिखलाना उचित है।

क़ानून का बर्ताव सदा अन्तिम अवस्था के लिये बचा रखना चाहिये। अन्य सब अवस्थाओं में अफ़सरों को अपने सभी मातहतों के साथ अनुग्रह और प्रेम का व्यौहार रखना योग्य है। जिसमें सभी सेना का एक दूसरे के साथ ऐसा घना सम्बन्ध मज़बूत हो जावे मानो सब मिल जुल कर कुल एक ही व्यक्ति हैं।

यदि परस्पर सुशीलता, नम्रता, और अदब का व्यौहार न होगा, ऊंचे दरजे के लोग नीचे दरजे के लोगों के साथ कड़ाई और बेअदबी का बर्ताव करेंगे तो परस्पर का ऐक्य सम्बन्ध ढीला पड़ जावेगा। और इस प्रकार वह रिश्ता जो एक सैनिक का अपने महाराजा के साथ है, हिल जावेगा। और महाराजा की इच्छा में जो वास्तविक जाति भर की इच्छा है, आघात पहुंचेगा।

सारांश यह कि सेना में सद्भाव और परस्पर प्रेम में किसी प्रकार का वैपरीत्य करने वाले न केवल सैनिक दृष्टि से वरन सम्पूर्ण देश और जाति के सन्मुख पाप के भागी होंगे।

(३) सिपाही का गुण बहादुरी और हिम्मत है। ये दोनों गुण अपाने देश के सनातन भूषण हैं। और निःसन्देह जातीयता का निर्माण तो इन गुणों के बिना हो ही नहीं सकता। सिपाही का व्यवसाय ही शत्रु से लड़ने का है। तो उसको बहादुरी का ध्यान क्षण भर के लिये भी भूलना नहीं चाहिये। पर याद रहे कि बहादुरी के भी दो भेद हैं। सच्ची बहादुरी और भुलावे की बहादुरी। जवानी का जोश और उसके आवेश में किसी काम को सहसा कर गुज़रना सच्ची बहादुरी नहीं है।

हथियारबन्द सिपाही को आवेश में आकर कोई काम सहसा कर डालना कदापि उचित नहीं है। उसका हर एक काम कारण और परिणाम को विचार कर होना चाहिये।

सिपाही के किये हुए काम का अंजाम सब के लिये लाभ दायक ही होना चाहिये। उसकी तनिक सी बेपरवाही का बहुत हानि कारक अंजाम हो सकता है।

तुम को शत्रु के अत्यन्त छोटे दल को भी तुच्छ नहीं समझना चाहिये। क्योंकि ठीक तुम्हारे ही तरह का उद्देश्य वह भी रखता है। उसका काम भी उतने ही गौरव का है जितना तुम्हारा। उसी तरह शत्रु की बड़ी सेना के सन्मुख भयभीत कदापि न हो क्योंकि वे भी तुम्हारी ही तरह के मनुष्य हैं। कोई भी विशेषता तुम से अधिक किसी में हो ही नहीं सकती। सारांश यह कि निर्भय चित्त से तत्परता पूर्वक उद्देश्य सिद्ध करना सच्ची बहादुरी है। जो लोग बहादुरी के इस सच्चे अर्थ को समझ लेंगे वे सदा दूसरों के साथ सादगी और सहानुभूति का व्यौहार करेंगे और ऐसा करने से शत्रु, मित्र, सभी के श्रद्धा भाजन बनते हुये जातीय उद्देश्य सिद्ध कर सकेंगे।

यदि जोश में आकर किसी के साथ कभी कोई काम सख्ती और बेरहमी से करोगे तो लोग तुम से वैसी ही घृणा करेंगे जैसी कि चीते और भेड़िये से करते हैं।

( ४ ) सिपाही को ईमानदार और धर्मात्मा होना चाहिये। ईमानदारी और धार्मिकता मनुष्य मात्र का उचित कर्तव्य है। फिर हथियार बन्द मनुष्य के लिये इन गुणों की कितनी बड़ी ज़रूरत है सो तुम अच्छी तरह समझ सकते हो। सिपाही के लिये और संसार भर के वास्ते भी इन दोनों शब्दों का अर्थ एक सा है "ईमानदारी" का अर्थ "बात का धनी होना" कौल फेल का सच्चा होना है और "धार्मिकता" कर्तव्य पालन का नाम है। सो यदि तुम चाहते हो कि सच्चे सिपाही के ये दोनों गुण तुम में आवैं तो तुम को किसी काम के करने या न करने के पहिले उस पर गंभीर विचार करना चाहिये।

यदि तुम किसी ऐसे काम के करने का बचन देते हो जिसकी अवस्था निश्चित रूप से तुम को ज्ञात नहीं है तो याद रक्खो तुम ईमानदारी की श्रेणी से जान बूझ कर पतित हो रहे हो। क्योंकि यदि किसी कारण से तुम अपने बचन को पूरा न कर सको जिसके पूरा करने का निश्चय तुम को पहिले ही से कार्य्य की अनिश्चित अवस्था के कारण नहीं है, तो उस अवस्था में तुम्हारा बचन टूट जावेगा। और तुम अपनी श्रेणी से गिर जाओगे। पीछे तुम्हारे हाथ में उस बदनामी से बचने का कोई उपाय न रह जावेगा और तुम को व्यर्थ पछताना पड़ेगा।

पहिले इसके कि तुम किसी काम के करने को तत्पर हो गम्भीरता पूर्वक विचार कर लो कि वह काम उचित है वा अनुचित, और तुम से हो सकता है अथवा असाध्य है बस कारण को विचार करने के बाद कर्तव्य कार्य्य में प्रवृत्त हो जावो। यदि तुम समझते हो कि जो बचन तुम देते हो अथवा जो काम तुमसे चाहा जाता है वह इतना बड़ा है कि तुम उसे पूरा न कर सकोगे। चाहे वह किसी कारण से क्यों न हो। तो तुम्हारी ईमानदारी और धार्मिकता यही है कि तुम उसका ज़िम्मा

मत उठाओ इतिहास प्रत्येक समय के बाबत ऐसी ही साक्षी दे रहा है। बहुत बड़े बड़े लोगों और वीर गणों ने अपने बचन प्रतिपाल के कारण अपनी अनमोल जानों को गवां दिया। जिसके कारण उनके निज गौरव की रक्षा तो हुई परन्तु शोक! कि संसार का कितना बड़ा नुक़सान, और न्याय की कैसी अवहेलना हुई। सो तुमको इस बात से सबक सीखना चाहिये और ऐसी भूल में कभी न पड़ना चाहिये जिससे तुम्हारी निज जीवन हानि हो और जाति को जोखिम में पड़ना पड़े।

(५) सादगी और मितव्ययशीलता (किफ़ायतसारी) भी सिपाही के लिये ज़रूरी आदतें हैं।

यदि तुम अपने चाल चलन में सादे और मित व्ययी न होगे तो निःसन्देह तुम निर्बल और कमज़ोर दिल के होगे। और तुम्हारी टेव विलासी (अराम तलब) हो जावेगी। जिसका परिणाम "ईर्षा शीलता" है।

ईर्षा मनुष्य के चित्त में कमीना पन पैदा कर देती है जिसके होते हुए उसको कोई भी पसन्द नहीं कर सकता और न उसका व्यङ्ग किसी को गवारा होगा। इस दशा में न तो तुम्हारी वीरता और न वफ़ादारी तुमको पतित होने से उबार सकैगी।

मनुष्य में हीनता का यह बड़ा भारी व्रण है। और इसका विष ऐसा छूत है कि यह जहां किसी एक को भी छू गया कि सारी सेना में छूत रोग की भांति फैल जावैगा। तब दिली जोश या दृढ़ उत्साह (Esprit decorps) आदि के मज़बूत किले भी ठहर नहीं सकैंगे और न कोई निबन्धप्रबध (discipline) ही काम आवैगा। हमने इस विषय को स्वयम् बहुत विचारा है। और विलास प्रियता के छूत की संक्रामकता को समझ कर ही सेना में इसके रोकने का बड़ा क़ानून बनाया है।

हमारा तुम्हारे साथ घनिष्ट सम्बन्ध ही हमको इस बात पर लाचार करता है कि हम तुमको बारम्बार इन बातों की याद दिलाते रहैं।

हमारी हार्दिक्य इच्छा है कि तुम इन बातों को सदा याद रक्खो।

हमारी यही पांच आज्ञायें हैं तुमको चाहिये कि इनको सदा ध्यान में रक्खो। परन्तु तुम्हें इन शिक्षाओं को अमल में लाने के वास्ते "सच्चे मन" की आवश्यकता होगी।

इन पांच आज्ञाओं को हथियारबन्द आदमी के "बीज मंत्र" समझना चाहिये और हम "सच्चे मन" के हों इन मन्त्रों की "शक्ति" है।

यदि मन सच्चा न हो तो ये मन्त्र और यह उपदेश केवल दिखाने के गहने हैं। और सच्चे मन से इनकी आराधना की जावै तो लक्ष्य बेध की इनमें अलौकिक शक्ति मौजूद है।

ये शिक्षायें निःसन्देह मनुष्य जीवन के साधारण राह की बातें हैं। इन पर अमल करना और अपने अपने जीवन को इनके अनुकूल बनाना कोई कठिन काम नहीं है।

सो यदि तुम इन आज्ञाओं को ध्यान में रख कर अपने देश की सेवा में तत्पर होगे तो न केवल अपने देश और अपनी जाति को ही सुखी करोगे वरन हमारे हार्दिक्य हर्ष और सन्तोष का कारण बनोगे।

पाठक गण! महाराजाधिराज मिकाडो मत्सहितू की अपनी सेना के प्रति यही पांच आज्ञायें हैं।

ये राज बचन कैसे मर्मस्पर्शी और हृदय ग्राही हैं! निःसन्देह इन मन्त्रों ने जापानी सेना के हृदय में स्थान पाया। उन लोगोंने "सच्चे मन" की आराधना से इन मंत्रों में शक्ति उत्पन्न करदी। उसी शक्ति के बल से आज उनके सभी कामों में कृत कार्य्यता और सभी ओर उनके यश का सौरभ फैल रहा है।

सचमुच ही जापानी सिपाही के प्रत्येक कामों में उसकी दिनचर्य्या की प्रत्येक घटिका में इन मंत्रों का चमत्कार चमक रहा है।

यूरोपियन शक्तियों की दृष्टि में जापानियों की यह चमत्कारिता आकस्मिक है और यह चिरस्थायिनी न होगी।

परन्तु हम विश्वास पूर्वक कहते हैं कि जब तक जापानियों की निष्ठा और अमल इन शिक्षाओं पर रहैगा। संसार की कोई भी शक्ति उनको नीचा नहीं दिखा सकती।

हमने जापानियों को स्वयम् "चीन की लड़ाई" में देखा था। देखा ही नहीं बल्कि उनके साथ ही साथ बहुत अवसरों पर काम किया था। हमने जापानी सिपाहियों में और उनके अफसरों में, वफ़ादारी और देशानुराग, नम्रता और आज्ञाकारिता, बहादुरी और हिम्मतवरी, ईमानदारी और धार्मिकता, तथा सादगी और मितव्ययिता पूर्णरूप से विराजमान पाया था। ऐसा देख कर ही हमारे मन पर उनके चाल चलन का अच्छा असर हुआ था और हमने अपनी "चीन में तेरह मास" नामक पुस्तक में उनकी समुचित प्रसंशा की थी जिसके विषय में हमारी प्रान्तिक सरकार ने अपनी Administration Report of U. P. 1902-03 में लिखा था।....................

The auther at Considerable length, sings the praises of the Japanese, whose valour and military efficiency, he says, strongly impressed the Indian soldiers.

हमने अपने सरकार की इस आलोचना को किञ्चित् कटाक्ष भी समझा था परन्तु हमारे प्रशंसा के गान आज बिलकुल सच्चे उतर रहे हैं।

हमारे विश्वास का कारण भी है वह कारण यही कि महाराजा मिकाडो की ये शिक्षायें हमारे लिए कुछ नई नहीं हैं। हमारा यही तो "आर्य्यधर्म" है। यही तो हमारे समृद्धि समय की दिनचर्य्या थी। हमारे समृद्धि समय के अन्तिम काल का एक मात्र बचा हुआ इतिहास व्यासदेव कृत "महाभारत" हमारी जातीय चर्य्या के सैकड़ों आख्यान सुना रहा है। जिनमें जातीय जीवन का निर्माण, संगठन, और परिचालन के ये ही उपाय और साधन वर्णन किये गये हैं। इन मन्त्रों के साधन करने वाले सत्पुरुषों के महत्व उदाहरण स्वरूप दिखलाये गये हैं। फिर इन्हीं के विपरीत चलने वालों की पतन कथायें भी वहां मौजूद हैं। हम, अतएव, अपने पाठकों से सविनय अनुरोध करते हैं कि अपने

जातीय इतिहास की कृपा करके एक बार पर्य्यालोचना कर जावें और देखें कि वहां क्या क्या अनमोल रत्न भरे पड़े हैं।

सो हमारे लिए ये आज्ञायें स्वयम् अनुभव की हुई हैं। हमारे तो ये अनुभव सिद्ध मन्त्र हैं।

हम क्यों न पूरे विश्वास के साथ कहें कि चाहे कोई भी जाति क्यों न हो जो इन शिक्षाओं के अनुकूल आचार व्यौहार करेगी उसको नीचा दिखाने वाला संसार में कोई हो ही नहीं सकता।

लोग कह सकते हैं कि जब कि ये तुम्हारे अनुभूत मंत्र थे तो तुम्हारे अपने ही देश का अधःपतन क्यों हुआ।

महाशय! सवाल सच्चा है। पर जवाब की अपेक्षा नहीं रखता जवाब क्या हो सकता है?

"सच्चा मन" ही इन मन्त्रों की शक्ति है।

शिक्षाओं को अमल में लाने के वास्ते "सच्चेमन" की आवश्यकता है।

बस उत्तर यही हो सकता है कि यहां "सच्चेमन" का अभाव हो गया था।

इन शिक्षाओं के सनातन से मौजूद होते हुये "सच्चेमन" का अभाव कैसे हुआ?

सो महाराजा मिकाडो के ही बचनों में बहुत काल से शान्ति सुखका भोग करते करते हमारे देश की योग्यता का नाश सा हो गया था।

अथवा हम यों कहें कि "मानसिक उन्नति के ऊंचे सोपान पर चढ़ जाने के सबब हमारे शिरस्थानी लोग सांसारिक उन्नति की वासना को भूल से गये। और "सिर" के अभाव में "हाथों" ने निरंकुश अत्याचार करके जातीयता का सर्वनाश कर डाला। और वे महामन्त्र भी जापान के तत्कालीन प्रबंध की तरह "केवल कागज़ों ही पर" रह गये।

"सच्चे मन" का यों अभाव हो गया और वे शिक्षायें हम में से लुप्तप्राय हो गई।

परन्तु मित्रगण! क्यों अब भी हमारे लिये वही "सिर का अभाव" और "हाथों की निरंकुशता" बनी हुई है?

नहीं? वह सभी बातें काल की अतल कन्दरा में विलीन हो गईं? अब संसार रूपी उद्यान में प्रातःकाल के अरुणोदय समय की नवल बसन्ती सौरभ सनी सुन्दर मनोहर समीर प्राची दिशा से बहती हुई हमारे शरीरों को स्पर्श कर रही है।

आओ हम सब लोग भी, नवीन मन, नवीन प्राण, नवीन उत्साह और नवीन बल से नव्य भारत की जनम बधाई देवें।

चमन चमन में नसीमें सहर पुकार आई।
ख़िज़ां का कूच हुआ बुल बुले बहार आई॥

गदाधरसिंह।

---

## प्रजा पीड़ा

हमारे ग्रन्थकारों ने प्रजा पीड़ा दो प्रकार की लिखी है दैवी और मानुषी। प्लेग दुर्भिक्ष, चेचक, कलेरा, आदि का फैलना दैवी विपत् या पीड़ा कहाती है। ये पीड़ायें दैवी कोप के कारण फैलती हैं और दैवका कोप तभी होता है जब लोगों की प्रवृत्ति कुत्सित कामों की ओर हो जाती है। पर यह पीड़ा चिरस्थायिनी नहीं रहती बरसाती नदी के समान उमड़ी और जो कोई अपने किसी अदृष्ट अपराध के कारण उस झोंक में आ गया उसे सकेल थोड़े दिन में आपही आप शान्त हो जाती है। प्रकृति के नियम और ईश्वरीय नियोग के अनुसार जब प्रकृति के नियमों की विकृति मिट गई तब वह पीड़ा स्वयं शान्त हो जाती है। दूसरी मानुषी पीड़ा है। चोर डांकू या शासनकर्ता की कड़ाई जो पुलिस या टैक्स इत्यादि से पैदा होती है। प्रचलित क्रम तो यह है कि राजा प्रजा का पालन करता है और प्रजा राजा का वैभव और धन संपत्ति बढ़ाती है।

## "प्रजां संरक्षति नृपः सा वर्द्धयति पार्थिवम्"

जहां प्रजा में बल है बल्कि प्रजा का समूह इस योग्य है कि अपना शासन अपने आप करले वहां उन पर हुकूमत करने वाला कोई हाकिम या राजा के होने की कोई ज़रूरत ही नहीं है और न वहां शासन के कारण प्रजा में किसी तरह की पीड़ा की कभी शंका होती है। वह देश दिन २ तरक्की करता जाता है और वहां की धन संपत्ति का भला क्या ठिकाना कि किस ओर छोर तक पहुंच सक्ती है। अमेरिका वाले इस समय जो उन्नति की सीमा को पहुंचे हुए हैं उसका यही कारण है कि वहां प्रजा प्रभुत्व है प्रजा में पीड़ा किसे कहते हैं इसका कदाचित् उन्होंने नाम भी न सुना होगा। स्वतंत्रता देवी के परमोपासक ऐसों के लिये "सर्वाः सुखमया दिशः" उनका अध्यवसाय, उद्यम, साहस, वाणिज्य कलाकौशल, रणकौशल, सत्य पर नेह, विद्या में अनुराग, स्वदेश वात्सल्य आदि समस्त सद्गुण सराहने योग्य हैं। नरतन में देवयोनि ऐसे ही को कहना चाहिए। देवयोनि संबन्धी पुराणों के अनेक आख्यान और आख्यायिकाएं बतला रहे हैं कि इस पुराने जीर्ण भारत में भी एक समय ऐसा ही था। कितनी बातों में तो अमेरिका से यह अधिक चढ़ा बढ़ा था। हमारी यह वर्ण व्यवस्था उसी समय की चलाई हुई है सब लोग अपना कुल परंपरा गत काम करते हुये देश की श्री वृद्धि के सहायक थे। एक दूसरा क्रम शासन का प्रजा पीड़ा रोकने के लिये राजा और प्रजा में ऐकमत्य का होना है और वह तब दृढ़ता के साथ कायम रह सक्ता है जब राजा के वर्ग वाले और प्रजा के अगुआ लोग हर तरह पर ताकत में बराबर हैं। प्रजा के अगुआ राजकीय दल से किसी बात में किसी तरह हेठे नहीं हैं। राजकीय वर्ग वाले यदि अनीति के बर्ताव से प्रजा में असन्तोष पैदा किया चाहें तो ये प्रजा के अगुआ लोग उन्हें भर पूर शठं प्रति शाठ्यं करने को तैय्यार रहते हैं और यह बात यूरोप के कई एक भाग्यवान् देशों में पाई जाती है जहां प्रजा में पीड़ा का लेशमात्र भी नहीं देखा जाता। विचार उन हत भाग्य देशों का किया जाता है जहां की प्रजा सब तरह बेमुंह की अन्धी, गूंगी, बहिरी और

नितान्त अबोधोपहत है। जो दास वृत्ति में पड़ी सड़ रही है जिनकी रक्त-संचारिनी धमनी में गरमी कहीं पर हई नहीं। जो ऐसे सीधे और सरल हैं कि उन्हें जिस ढंग पर रक्खो उसी में मस्त हैं। जो औरों की चतुराई का मर्म कुछ न समझ सब खो बैठे। पीड़ा सह रहे हैं पर उस पीड़ा का क्या कारण है कुछ नहीं जानते।

प्रजा में पीड़ा और असन्तोष फैलने के दो बड़े कारण हैं उनके धर्म में हस्तक्षेप और उनका धनापहरण। जब से हिन्दू का चक्रवर्ती राज्य देश से उठा तब से दो विजातीय यहां के सम्राट् हुये एक मुसलमान दूसरे अंगरेज़। मुसलमान सब लोगों को अप्रिय इस लिये थे कि उन्होंने हमारे हिन्दू धर्म को बहुत ही तहस नहस किया और अब इस अंगरेज़ी राज्य में जो प्रजा को पीड़ा है और असन्तोष फैलता जाता है सो इस लिये कि शासन के साथ ही साथ वणिक् वृत्ति पर आरूढ़ हो हर एक बहाने हमारा रुपया ये खींच रहे हैं। सब लोग निःसत्व और निर्धन हो गये। जहां का एक अरब के लगभग धन प्रति वर्ष वाहर चला जायगा वहां के दिन देश में संपत्ति ठहर सकती है। प्रगट में हमारे धर्म में हस्तक्षेप नहीं होता पर तालीम ऐसी फैलाई गई है जिससे पुरानी बातों पर श्रद्धा लोगों की हटती जाती है। जिसे मुसलमान हज़ार वर्ष में न कर सके उसे तालीम ने सौ वर्ष में कर डाला। नवयुवकों को पुरानी बातों पर श्रद्धा का कम होना भावी भलाई का उत्तम चिन्ह अवश्य है पर उसकी जगह दूसरी नई बात जो अभ्युदय की सूचक हैं और शासक जाति के गुण हैं सो हमारे नवयुवकों में स्थान नहीं पाती। जैसा ब्रह्मचर्य, समस्त जाति का ऐकमत्य, अपने काम में मुस्तैदी, देश प्रेम, देश के लिये स्वार्थत्याग इत्यादि। पान दोष साहब बनना खान पान में स्वच्छन्दता इत्यादि अलबत्ता उनमें आ गया है। साथ ही परिवर्तन विमुखता Conservatism पुराने लोगों में भी एक दोष है। अड़कर यथास्थित Stationary रह कभी किसी जाति ने आज तक उन्नति नहीं किया। हमारा यथास्थित रहना भी शासन कर्ताओं को अपने मन की कर गुज़रने के लिये सुबीता कर देने वाला हुआ। अपनी राज-

नैतिक पटुता काम में लाय ऐसे ढंग से शासन कर रहे हैं कि रुपया हमारा बराबर खिचता जाय । अभी तक तो केवल रुपया खींचना इनका उद्देश्य था अब इस बात की भी विशेष फिकिर रहती है कि सर्वसाधारण का अबोधोपहत होना भी इन से दूर न हो । इसमें सन्देह नहीं अनेक तरह की आशाइसें बढ़ती जाती हैं यह आशाइस हमारे लिये विष है इससे हम आलसी होते जाते हैं देश धन हीन होगया है दरिद्रता अपना डेरा डाल हमें मीजे डालती है अस्तु ।

सच तो यह है कि राजा में राजत्व दृढ़ रखने को प्रजा का समूह प्रधान है । प्रजा को सन्तुष्ट रखना ही राजा की रजाई है । जिस पर इतने लोग अपने जान माल की रक्षा का पूरा भरोसा रख सुख की नींद सोवें तब तो बड़ी भारी ज़िम्मेदारी Responsibility का बोझ उसके कन्धे पर धरा हुआ है । हमारे देश के पुराने राजा लोग इसका क्या मर्म है सो खूब समझे हुये थे । रघुवंश में कालिदास ने लिखा है "तेन धूर्जगतो गुर्वी सचिवेषु निचिक्षिपे" उसने जगत पालन का भारी बोझ मंत्रियों पर रक्खा। और यह तभी हो सकता है जब सब लोग सुख की नींद सोते हों उस समय आप जागता रहे । इससे सिद्ध हुआ कि राजा अपने को सबों का मालिक नहीं वलिक सबों का कार्य कर्ता वशंवद समझे और प्रजा के धन को प्राण के समान जोगवै । औरंगज़ेब अत्याचारी और ज़ालिम ज़रूर था पर राजनीति के इस मर्म को ख़ूब समझे था । मरती बार अपनी वसीयत में लिख गया था कि उसकी अन्तेष्टि क्रिया उसी ९ सौ रुपये से की जाय जिसे उसने कुरान लिख २ जमा किया था । खयाल करने लायक़ है कि राजा या राजा के वर्ग वाले प्रजा के धन से ऐश और आराम करते जो मनमाना गुल छर्रे उड़ा रहे हैं सो कहां तक राजधर्म के अनुकूल है । इतना ही नहीं बल्कि जब देश में लोग दुर्भिक्ष पीड़ित हो हाहाकार कर रहे हैं । ऐसे में भी राजकीय वर्ग वालों के आमोद प्रमोद में कहीं से कसर नहीं होने पाती । इतने पर भी शासन में हर तरह की कड़ाई भांत २ के टैक्स और चुंगी के कारण प्रजा में पीड़ा

घटने की कौन कहै प्रत्युत प्रतिदिन बढ़ती ही जाती है। 'कौन जान सकता है यह पीड़ा कहां तक बढ़े और अन्त में परिणाम इसका क्या हो। इतना अवश्य कहा जायगा कि यह पीड़ा गूंगें को वाचाल अन्धे को सुजाखर अबोध या गाउदी को तेज़ फ़हम और प्रबुद्ध कर मरे हुओं में जान डाल देती है "परिणामेऽमृतोपमा" इसकी तरक्की देश को हित है। तत्व इससे यही है कि सब सहता जाय और धीरे २ पीड़ा से मुक्त होने की चिन्ता में लगा रहे।

---

# ब्रह्मचर्य।

## ( ठाकुर सूर्यकुमार वर्मा लिखित )

यह लेख नागरी प्रवर्द्धिनी सभा में पढ़ा जा चुका है।

हमारे पूर्वजों ने किसी समय ज्ञान और पराक्रम द्वारा सारे संसार को चकित कर दिया था। सुगन्धित सुमन और स्वादिष्ट फलों से लदा हुआ सनातन आर्य धर्म का दिव्य पौधा जिन्होंने आरोपित किया था। जिस देश में पाणिनि, और पतंजलि से वैयाकरण, गौतम, और कणाद सरीखे दार्शनिक बाल्मीकी और व्यास सरीखे महाकवि, रामचन्द्र के समान मर्यादा पुरुषोत्तम, युधिष्ठिर के समान सत्यवादी, कृष्णचन्द्र आनन्दकन्द के समान योगी, सीता सरीखी ललना ललाम पतिव्रता पैदा हुई थीं। बहुत दिनों की बात नहीं अभी हाल ही के ज़माने में विक्रम, भोज, से विद्यानुरागी, शिवा जी, महाराणा प्रताप, रणजीत सिंह के समान वीर; शंकराचार्य, दयानन्द गुरु गोविन्द सिंह सरीखे महात्मा; अहिल्या बाई, वायजा बाई, लक्ष्मी बाई सरीखी वीर माता और वीर पत्नी उत्पन्न हुईं; उसी देश में इस समय अपने पूर्वजों का नाम और कीर्ति बनाए रखने वाले, बहुत ही कम मानव रत्न दिखाई पड़ते हैं। आज कल हमारी जैसी हीन दशा हो रही है उसका स्मरण करते ही हमारी आखों में जल भर आता है। शरीर में रोमांच हो आते हैं और मन में नाना प्रकार की भावनायें उत्पन्न होती हैं। कभी २ तो यह भी सन्देह उत्पन्न होता है कि यदि हम बराबर इसी तरह गिरते गए तो

एक दिन कहीं हमारा मूलच्छेद तो नहीं हो जायगा। इतिहासों को पढ़ने से, यह बात स्पष्ट प्रगट होती है, कि बहुत सी जातियों ने प्रमोद में फँस कर अपने उत्थान के लिए कोई उपाय न किया इस कारण वे सदैव के लिए रसातल में चली गईं। इस समय उनका नाम निशान तक भी ढूढ़ने से बड़े परिश्रम से मिलता है। हां, यह बात सच है कि आज कल हम लोगों को दरिद्रता ने इतना अधिक जकड़ लिया है कि हम से किसी तरह अपनी उन्नति अथवा सुधार करते नहीं बनता। और यही कारण है कि आज कल जिस दशा में हम हैं क्रमशः उस से नीचे नित्य प्रति चले जाते हैं। अर्थात् हमारी शारीरिक, आत्मिक और सामाजिक उन्नति की बची बचाई जरजर इमारत दिनों दिन ढहती जाती है। और इसी कारण हमारा राष्ट्र रूपी महल नष्ट भ्रष्ट हो गया! हमारी इस हीन दशा का कारण क्या है? सज्जनों हमारे गिरने के अनेक कारण हैं परन्तु उन सबों में मुख्य कारण, मेरी दृष्टि में, यह है कि, हम लोग अपने पूर्वजों के उत्तम चाल चलन और उनकी बांधी हुई सर्वोत्तम परिपाटी, रीति नीति पर नहीं चलते। हम लोगों ने अपने माननीय पूर्वजों के उत्तम गुणों का अनुकरण करना त्याग दिया है। हम अपने पूर्वजों के नाम पर नित्य और नैमित्तिक श्राद्ध तर्पण अवश्य करते हैं। उनकी आत्मा को परोक्ष में सुख पहुंचाने का उद्योग ज़रूर करते हैं परन्तु प्रत्यक्ष में हम उनके गुणों का परित्याग करके उनके रक्षित स्वधर्म और स्वदेश की कुछ भी परवाह नहीं करते। उनके गुणों का त्याग करने से वे गुण अब हम में से प्रायः लुप्त हो गये हैं। हमारे पूर्वज, गृहस्थाश्रम स्वीकार करने के पश्चात् भी ब्रह्मचर्य व्रत का पालन करते थे परन्तु हम लोग आज कल ब्रह्मचर्याश्रम में रह कर भी ब्रह्मचारी नहीं रहते! हमारे राष्ट्र की अवनति, स्वराज्य प्राप्ति न होने का कारण, मुख्य कर, हम लोगों में से ब्रह्मचर्य का लोप हो जाना ही है। नव विकसित कली के समान हमारे युवा ब्रह्मचर्य व्रत की ओर, कुछ भी ध्यान नहीं देते। हमारे सनातन धर्मावलम्बी भाई सदैव एकादशी, प्रदोष, इत्यादि सैकड़ों व्रत, सदा रहते हैं। कोई महीना, कोई पक्ष,

कोई सप्ताह ऐसा नहीं बीतता जिसमें वे कोई न कोई व्रत न करते हों। परन्तु खेद है कि ब्रह्मचर्य व्रत, जिस पर देश और समाज की नींव स्थिर है उस पर उनका बिलकुल ध्यान नहीं जाता। प्राचीन समय में, हमारे पूर्वजों ने, बड़े बड़े गहन विषयों पर विचार किए; जिस के कारण वे तत्वज्ञानी कहलाये, सारे संसार के शिक्षा गुरु बने, अतुल पराक्रम के कार्य करके सारे भू मंडल पर अपने विजय का डंका बजाया; ये सब कार्य उन्होंने किसकी सहायता से पूरे किए? उन्हें केवल ब्रह्मचर्य का ही सहारा था। भीष्म-पितामह केवल ब्रह्मचर्य व्रत धारण करने से ही अजेय हुए और देवव्रत कहलाये। जिन्होंने पाण्डवों की सेना को बराबर १० दिन तक युद्ध में परास्त किया और जब तक अपने आप अपने करने का उपाय न बतलाया तब तक उन्हें कोई मारने में समर्थ न हो सका। हम आप लोगों में से जो स्वराज्यबादी हैं उनसे सविनय प्रार्थना करते हैं कि जब तक आप लोग भीष्म के समान ब्रह्मचर्य व्रत न करेंगे अथवा अपने साथियों को न करायेंगे तब तक आप स्वराज्य की कौन कहे दास होकर भी देश में न रह सकोगे॥

शरीर सुदृढ़ रहने से ही बुद्धि बलवती होती है। यह बात हमारे पूर्वजों को अच्छी तरह मालूम थी। शारीरिक बल द्वारा ही भावी सब सुख प्राप्त हो सकते हैं और सब प्रकार की उन्नति इसी पर निर्भर है। हमारे पूर्वज अपनी शारीरिक सम्पत्ति को युवावस्था में भी व्रतस्थ रह कर सम्पादन करते थे। ब्रह्मचर्य व्रत के समान पुरुषार्थ दायक अन्य शारीरिक कोई व्रत नहीं है। बड़े बड़े राजनैतिक और सामाजिक कामों को पूरा करने के लिये व्रतस्थ युवा पुरुष की ज़रूरत पड़ती है। बिना इस व्रत को धारण किये और बिना इसकी सहायता कोई कार्य पूरा नहीं हो सकता। ब्रह्मचर्य व्रत की सब से पहिली और सर्व श्रेष्ठ सीढ़ी है। क्योंकि इसी सीढ़ी की सहायता से मनुष्य बड़े बड़े महलों पर चढ़ कर सब प्रकार के सुखों का अनुभव प्राप्त करता है। ब्रह्मचर्य का ही ह्रास होने से हमारे देश की दुर्दशा हुई और हो रही है। आज कल हम लोग ब्रह्मचर्य की इतनी उपेक्षा कर रहे हैं कि जिस

के कारण देश में व्यभिचार दिनों दिन ख़ूब बढ़ रहा है। युवा पुरुष अपने आप अपने पैरों में कुल्हाड़ी मार रहे हैं। दिनों दिन अपनी आयु को कम कर रहे हैं। और इसी कारण दिनों दिन हमारा देश हीन अवस्था को पहुंचता जाता है। साहसी, बलवान, ज़बरदस्त— 'कालहु डरहिं न रण रघुवंशी, ऐसे पुरुष अब देखने की तो कौन कहे सुनने में भी नहीं आते। निग्रह और विचार पूर्वक कार्य करने वाले लोग अब हम में कहीं दिखाई नहीं पड़ते! सुदृढ़ और निश्चय पूर्वक कार्य करने वाले लोग ढूंढ़े जांय तो हम में मिलना कठिन है! साहस का नाम लेते ही हमारे शरीर में रोमांच हो आते हैं। साहस न रहने से ही हम दासत्व की ज़ंजीरों में इतना अधिक जकड़ गये हैं कि किसी नवीन खोज के कार्य की हम में शक्ति ही न रही। मैं आप को यहां पर साहस का एक उदाहरण बताना चाहता हूं। जिस समय ट्रांसवाल में अंगरेज़ और बुअरों से युद्ध हो रहा था उसी समय हमारे यहां, ग्वालियर राज्य में, एक अंगरेज़ जो म्युनिसिपेलिटी का सेक्रेटरी था और जिसे क़रीब पांच सौ रुपया मासिक मिलता था महाराज सेंधिया की एक बात पर अप्रसन्न हो गया। वह बात यह थी, महाराज ने कहा आप म्युनिसिपेलिटी के सेक्रेटरी हैं अतएव-आप को मेम्बर लोगों की सलाह से कार्य करना चाहिये। परन्तु उसने महाराज की इस आज्ञा को अस्वीकार करके अपने पद से इस्तेफ़ा दे दिया। इस्तेफ़ा देने के पश्चात मैं भी एक दिन कार्य वश बंगले पर जाउससे मिला। वहां उससे मैंने पूछा कि अब आप कहां जांयगे और क्या करेंगे? आप को ज़रा सी बात के लिये इतने बड़े पद का त्याग करना, अच्छा न हुआ। उसने हँस कर मुझ से कहा कि जिस मनुष्य में आत्म गौरव नहीं है उसे मनुष्य कहना भी उचित नहीं। वह पशु से भी गया बीता है। महाराज साहब ने जब मुझे बुलाया था तब मुझ से यही शर्त हुई थी कि मैं स्वतंत्र रूप से कार्य कर सकूंगा। मुझे कार्य करने के लिये सब अधिकार प्राप्त होंगे। मैं सीधा दरबार का मातहत समझा जाऊंगा। परन्तु अब महाराज मेम्बरों के आधीन

रह कर मुझे कार्य करने की आज्ञा देते हैं। मैं इस प्रकार अपने आत्म-गौरव को नष्ट कर के अपना पेट पालन करना नहीं चाहता। ऐसा करने से मुझ पर और मेरी जाति दोनों पर कलंक का टीका लगेगा। मैं इस तुच्छ नौकरी के लिए इस प्रकार कलंकित होना नहीं चाहता। अब मैं यहां से मंसूरी जाऊंगा और वहां अपने एक मित्र के पास अपनी पत्नी को छोड़ कर मैं स्वयं ट्रांसवाल पहुचूंगा। मैं वालंटियर हूं। अतएव वहां जाकर युद्ध में शरीक हूंगा। क्योंकि आजकल हमारी जाति के ऊपर महा संकट उपस्थित है। यदि युद्ध में हमारे देशवासियों की विजय हुई और मैं भी जीता जागता बच आया तो फिर इस प्रकार की नौकरियां तो मुझे हज़ारों मिल जांयगी। हम लोग नौकरी का परवाह नहीं करते। हम लोग परवाह करते हैं आत्म गौरव, मान, मर्यादा और प्रभुत्व की। इन वस्तुओं को पाने के लिए हम लोग अपने जीवन की कुछ भी परवाह नहीं करते। ट्रांसवाल में जो हमारे लाखों आदमी मर रहे हैं वे केवल अपने देश की मान मर्यादा और प्रभुत्व की इच्छा से ही अपने प्राण विसर्जन कर रहे हैं। जिस पुरुष अथवा जाति के लोगों में प्राण देने की शक्ति अथवा साहस है उसके लिए हज़ार पांच सौ रुपया मासिक की नौकरियां मिल जाना क्या कठिन है। वे जब चाहें तभी उसे सहज में ही प्राप्त कर सकते हैं।

सज्जनों! आपने समझा कि एक अंगरेज़ पांच सौ रुपया माहवार की नौकरी पर क्यों लात मार देता है? उस में साहस है। प्राण देने की शक्ति है। परन्तु क्या प्राण देने की शक्ति और साहस होना विना ब्रह्मचर्य के सम्भव है? अंगरेज़ों में कोई अवगुण नहीं हैं, वे दुराचारी नहीं होते यह मैं नहीं कहता। परन्तु उनमें से अधिकांश मध्यम कक्षा के ब्रह्मचर्य का पालन अवश्य करते हैं और यही कारण है कि वे सब प्रकार के कष्टों को धैर्य के साथसहन कर लेते हैं। मनुष्य के लिए जितनी मानसिक बल की आवश्यकता है उतनी ही शारीरिक बल की जरूरत है। ब्रह्मचर्य व्रत धारण करने से, मनुष्य में, शारीरिक बल ही नहीं आता वरन मानसिक बल की भी उसी के द्वारा सिद्धि प्राप्त होती,

है। अतएव शारीरिक और मानसिक दोनों प्रकार की उन्नति प्राप्तकरने के लिए अत्यन्त आवश्यकीय ब्रह्मचर्य व्रत का संस्कार फिर से युवा पुरुषों के कलुषित मनों पर डालना चाहिए। जिस प्रकार लोगों का ध्यान इस ओर आकर्षित हो उसी प्रकार से उद्योग करना चाहिए।

सज्जनों! क्या हमारे देश के बड़े २ सुशिक्षित राज-नीतज्ञ पुरुषों का यह कर्तव्य नहीं है कि वे इस ओर ध्यान दें? जो लोग गवर्मेंट की छोटी सी छोटी बातों की आलोचना में बात का बतंगड़ बना देते हैं; क्या वे अपनी जाति की इस बड़ी भूल पर ध्यान नहीं देंगे? जिन अधिकारों को आप लोग गवर्मेंट से मांगते हैं; क्या वे अधिकार आप लोगों को बिना ब्रह्मचर्य व्रत का साधन किए प्राप्त हो सकते हैं? ये सब बातें हमारे देश के उन नेताओं को सोचना और मनन करना चाहिए जो साधन को एकत्रित किए बिना गवर्मेंट से, स्वत्व पाने के लिए, चिल्ला चिल्ला कर, गला फाड़ डालते हैं और निष्प्रयोजन प्रस्ताव पर प्रस्ताव पास करते चले जाते हैं। संसार के इतिहास पर एक सरसरी दृष्टि डालने से आप लोगों को मालूम होगा कि संसार में अब तक जितने स्वतंत्र राजा अथवा महाराजा हुए वे सब राजनीतज्ञ होने के साथ ही योद्धा भी थे। बिना दोनों प्रकार की शक्ति सम्पन्न हुए कोई मनुष्य अथवा जाति स्वतंत्र रूप से राज्य करने अथवा अधिकार पाने में समर्थ नहीं हो सकी न आगे को होने की आशा है। वर्तमान समय में ही आप लोग अमेरिका के प्रजा तंत्र राज्य की ओर देखिए उसमें आज तक जितने प्रेसिडेंट हुए वे सब राजनीतज्ञ होने के अलावा जनरल भी अवश्य थे। हमारे कहने का तात्पर्य यह है कि शारीरिक और मानशिक शक्ति उत्पन्न हुए बिना हम से कभी स्वतंत्रता देवी प्रसन्न नहीं हो सकतीं"। अतएव ब्रह्मचर्य व्रत को राजनैतिक आन्दोलन का मूल मंत्र समझ इस महाव्रत का पालन हम सब लोगों को एक चित्त हो मिल कर करना चाहिए।

सज्जनों! पहिले समय में लोग अपने बालकों को सात आठ वर्ष का होते ही विद्या प्राप्ति के लिए कुरुकुल में भेज देते थे। वे वहां सत्त-

रह अठारह वर्ष तक रह गुरू की सेवा में तत्पर हो श्रद्धा पूर्वक धर्म और नीति की शिक्षा ग्रहण करते हुए ब्रह्मचर्य व्रत का पालन करते थे गुरुकुल वास के समय में उनका शारीरिक बल पूर्ण रूप से बढ़ जाता था उनका मन सुदृढ़ और उनमें कार्य करने की क्षमता उत्पन्न होती थी। उस समय लोग कम से कम २५ वर्ष की उमर तक विद्या उपार्जन करते थे। अतएव बालकों की शारीरिक उन्नति २५ वर्ष तक बराबर होती रहती थी। आज कल गुरुकुल की जगह कालिज और स्कूलों ने छीन ली है। उस समय के गुरुकुल और आज कल के स्कूल कालिजों में ज़मीन आसमान का अन्तर है। पहले समय में बालक गुरुकुल में ठहर कर सदाचारी, धर्म शील, नीतज्ञ, सुदृढ़ और सतेज होते थे। परन्तु आज कल के लड़के स्कूल से निकलते ही तेज और श्री रहित दिखाई पड़ते हैं। कालेज से निकलते ही उनकी आखें कमज़ोर, कमर झुकी हुई, चेहरे पर झुर्रियां पड़ी हुई दिखाई पड़ती हैं! किसी बहुत बड़े कार्य करने का उन्हें साहस नहीं पड़ता! उन्हें सूझती है केवल नौकरी! गुलामी!! और दासत्व !!!

सज्जनों! आप में से बहुत से लोग मुझसे यह पूंछ सकते हैं कि इसका कारण क्या? बहुत से लोग तो यह कहते हैं कि आज कल की शिक्षा-प्रणाली अच्छी नहीं। विद्यार्थियों को बहुत से विषय एक साथ पढ़ाये जाते हैं, अङ्गरेज़ी के छोटे २ अक्षरों को पढ़ने से उनकी आखें कमज़ोर हो जाती हैं। परन्तु मेरी समझ में इन सब कारणों का एक महा कारण यह आता है कि आज कल विद्यार्थी दशा में शिक्षा पूरी होने के पहले स्कूल और कालिजों में ही हमारे बालकों का ब्रह्मचर्य नष्ट हो जाता है। गृहस्थाश्रम में प्रवेश करने से पहले वे अपना ब्रह्मचर्याश्रम कालिज में ही समाप्त कर देते हैं। पहले समय में विद्यार्थियों को अपना आचरण बहुत ही शुद्ध रखना पड़ता था। गुरुकुल में रह कर अधिकारानुसार शिक्षा पूरी करने पर विद्यार्थी को गृहस्थाश्रम में प्रवेश होने की आज्ञा मिलती थी। अर्थात् वह उस समय विवाह करने योग्य समझा जाता था। परन्तु आज कल की प्रथा

उस समय से बहुत ही विपरीति है सरस्वती देवी के प्रसन्न होने से पहले ही बालक पिता हो जाते हैं ! जिस उमर में बालक के मन में शारीरिक बल की वृद्धि के कारण हृदय में नई २ उमंगे उठती हैं नया उत्साह, तथा साहस आता है; उस उमर में उन्हें काम कला सूझती है यह कुसमय में पिता बनने का ही बुरा परिणाम है । जिस उमर में लोग काम करने के योग्य होते हैं उसी उमर में आशा देवी रूठ जाती हैं ! देश की भलाई का सारा दार मदार देश के नवयुवकों पर अवलम्बित है । जिस देश में युवा कार्य करने के योग्य होते ही, ब्रह्मचर्य का पालन न करने से, मुरझाई हुई कली के समान भावी भलाई से निराश रहते हैं उस देश की उन्नति कैसे हो सकती है ? ब्रह्मचर्य का यह मतलब नहीं हैं कि मनुष्य जन्म भर कुंवारा रहे । ब्रह्मचर्य का पालन करने वाले मनुष्य को चाहिए कि वह अपने शरीर, मन और आचरणों को पवित्र बनावे , अर्थात् शारीरिक ब्रह्मचर्य के साथ ही साथ मानसिक ब्रह्मचर्य का भी पालन करना चाहिए । क्योंकि शरीर को निरोग्य और सुदृढ़ रखने पर भी यदि मन बुरे विचारों से कलुषित किया जाय--रेनाल्ड साहब के उपन्यास अथवा शृंगार रस प्रधान कविता अथवा नाटकों का अध्ययन किया जाय तो मन की पवित्रता नष्ट हो जाती है । मन अपवित्र होजाने से ब्रह्मचर्य पालन करना अथवा न पालन करना दोनों बराबर हैं । अतएव मन को कलुषित न होने देना और अपने आचरणों को पवित्र रखना ब्रह्मचर्य व्रत धारण करने की पहली सीढ़ी है । इन्द्रिय निग्रह और ज्ञान की प्राप्ति ब्रह्मचर्य व्रत की दूसरी सीढ़ी है । पहली सीढ़ी पर चढ़ना अधिक कठिन नहीं है परन्तु दूसरी सीढ़ी पर चढ़ना तनिक कठिन काम है । यदि पहली सीढ़ी पर चढ़ कर हम लोग उद्योग और अभ्यास से शनैः शनैः दूसरी सीढ़ी पर चढ़ जांय तो हमारी वीर्य सम्पत्ति सदा के लिये दृढ़ हो जाय। कठिन से कठिन परिश्रम का कार्य आ पड़ने पर हम भी उसे सहज में ही पूरा कर सकें। इस लिये उचित है कि हम ब्रह्मचर्य के पालन में दृढ़ हों और दूसरों को भी इस रास्ते पर लाने में उद्योग कर अपने को स्वराज के योग्य बनावें ।

# पुजारी और व्योपारी का झगड़ा।

एक समय गुणवान विप्र से व्योपारी का हुआ मिलन॥
उभय परस्पर दोष बताकर युगल महाशय लगे लड़न॥ टेक॥
कहैं पुजारी सुनों सेठ जी सबका धर्म गँवाते हो॥
मोरस चीनी मँगा २ कर शहरों में बिकवाते हो॥
बड़ी अपावन धर्म नशावन तुम्हीं यहां पै लाते हो॥
धर्म खोय धनवान कहाये मन में नहीं लजाते हो॥
इस अधरम से किया इकट्ठा पड़ा रहैगा घर में धन॥ १॥
कहैं तमक कर सेठ पुजारी तुम क्यों भोग लगाते हो॥
जान बूझ कर मोरस चीनो हलुए में डलवाते हो॥
फेर २ कर हाथ पेट पर लप २ लड्डू खाते हो॥
चोखी बनी मिठाई कह कर तुम जिजमान रिझाते हो॥
बुद्धि भ्रष्ट हो गई इसी से बिगड़ गया है चाल चलन॥ २॥
जब जहाज़ चीनी का आवे कौए से घिर जाते हो॥
करो नफ़ा की आश वहां पर बढ़ २ दाम लगाते हो॥
घर में लाकर छल से उसको देशी खांड़ बनाते हो॥
नहीं पाप से डरो बड़ों के यश में दाग़ लगाते हो॥
सतबादी थे पुरखे जिनके लड़के भूले सत्य बचन॥ ३॥
देख मिठाई लाल पुजारी चेलों को धमकाते हो॥
हलवाई की करो बुराई उसके दाम घटाते हो॥
है आधीन तुम्हारे भारत-अधरम तुम्हीं कराते हो॥
फँस बिषयों में नहीं किसी को सच्चा ज्ञान सिखाते हो॥
थे पुरखे विद्वान तपस्वी तुम लड्डू के हो बरतन॥ ४॥
तुम मुखिया व्यौपार बणिज के श्रोत तुम्हीं से जारी है॥
नहीं धर्म की चाह आपको दौलत जी से प्यारी है॥
छल से मिला खांड़ में चीनी सब की बुद्धि बिगारी है॥
इसी पापकी अधिक दया से भारत हुआ भिखारी है॥
टुकड़ों को तुम भी तरसोगे इक दिन सेठ भिखारी बन॥ ५॥

महतर तक इसको नहिं खावें गट २ जिसे गटकते हो ॥
पुन्यवान पुरषों अपने को हाथों नर्क पटकते हो ॥
धर्म ओट में पाप कराते चेलों सहित भटकते हो ॥
जीभ लोक परलोक बिगाड़ै अधबर पार लटकते हो ॥
खाई मिठाई पाई पाई यही तुम्हारा रहा भजन ॥ ६ ॥
सुनलो भाई छोड़ लड़ाई चीनी भ्रष्ट मिठाई है ॥
धन और धर्म बुद्धि को नाशै रोग शोक दुखदाई है ॥
खाना और मंगाना छोड़ो छल की बुरी कमाई है ॥
प्रेम परस्पर करो तुम्हारा ईश्वर सदा सहाई है ॥
छेदालाल का ख्याल मान कर जगदीश्वर की गहो शरन ॥ ७ ॥

छेदालाल।

# सूरत की बेडौल सूरत।

## दूसरा दृश्य।

स्थान–तिलक के ठहरने का ख़ेमा तिलक और लाजपत।

तिलक–गत कांग्रेस में स्वीकृत मन्तव्यों का जीवन दान मात्र मैं चाहता हूं। स्वदेशी, स्वराज, स्वशिक्षा, और बहिष्कार को दृढ़ता के साथ स्थान दिया जाय यही मैं मांगता हूं। इन्हीं बातों के लिये मैं प्रतिज्ञा बद्ध हूं इन्हीं के लिये मेरा झगड़ा है इन्हीं पर सब रगड़ा है।

लाजपत–मैं समझता हूं इसमें किसी को उज़् न होना चाहिये इससे तो नरम दल वाले सब सहमत होंगे। हमें तो इस समय एकता का बीज बोना है तब सबों की एक राय होनी चाहिये।

तिलक–अवश्यमेव यदि नर्मों में हठ और दुराग्रह न होता अथवा राष्ट्रीय दल को हेठा न करना होता।

लाजपत–नरम लोग भी विद्वान् और बुद्धिमान् हैं कांग्रेस को आज तक उन्हीं ही ने पाला पोषा। इसमें कामयाबी का मुझे पक्का भरोसा है। जाता हूं और शुभ समाचार अभी तुर्त लाता हूं।

तिलक-शुभस्य शीघ्रम् जाइये (स्वगत) कायरता ने नरमों की बुद्धि में भ्रम छोड़ रक्खा है तुम्हारे कृतकार्य होने की सर्वथा निराशा है। (प्रगट) आपको कृतकार्य होने की आशा है तो जाइये मैं भी अपने लोगों को आपका सहकारी होने के लिये उद्यत करता हूं। (प्रस्थान) (नेपथ्य में)

उठो हिन्द के पूत कभी कटुबचन सहोना ।
प्रान देहु मर्याद हेतु अपमान सहोना ॥
दै छाती पर लात गर्व इन कर सब तोड़हु ।
आज सिखावहु पाठ यही दुष्टन सिर फोड़हु ॥

क्या हम लोग राज और देश के द्रोही हैं। यही क़ानूनदानी और लियाक़त की कसौटी है।

तिलक-मालूम होता है यह घोष बाबू की छपी हुई स्पीच का नतीजा है जिस में उन्होंने नेशनलिस्टों को जो कुछ चाहा सख्त सुस्त कह डाला है।

( हैदर रज़ा और अजीत को साथ लिए कई एक नेशनलिस्टों का प्रवेश)

हैदर-(विनय पूर्वक) गर मुल्क के ख़ातिर मेरी दुनियां में से तौकीर हो। हाथ में हथकड़ी हो अरु पांवों में जंज़ीर हो। आंखो के ख़ातिर तीर हो मिलती गले संशीर हो। मर कर भी मेरे जान पर ज़हमत बला ताख़ीर हो। मंज़ूर हो मंज़ूर हो मंज़ूर हो मंज़ूर हो।

अजीत-दोस्तो आप लोगों से मेरी यही आरज़ू है ये नरम बड़े बुज़दिल और मक्कार हैं इनका साथ छोड़ो और स्वदेशी की तरक्क़ी में तन मन से लग जाओ अच्छा किसी ने कहा है-"यही है आरज़ू मित्रो चलन अपना स्वदेशी हो। रहन अपना स्वदेशी हो सहन अपना स्वदेशी हो। जहां जायें जहां बैठें करैं चरचा स्वदेशी की हृदय अपना स्वदेशी हो कथन अपना स्वदेशी हो। इत्यादि।

तिलक-सुनहु धीर गंभीर वीर हिन्दूकुल भूषण।
धरम धुरीण प्रवीण शान्ति प्रिय जित सब दूषण।

क्रोध करन भल नहीं क्रोध तें विगड़त काजा ।
प्रेम सहित सब मिलहु नांहि एहिमें कछु लाजा ।
जो सुनि हैं मम विनय देश हितकारी भाई ।
ईश्वर कहँ धनवाद कनग्रेस अहै बधाई ।
त्यागौ सकल विरोध यही है हमरी शिक्षा ।
झगड़न नीचो काम देहु यह हम कहँ भिक्षा ।
तन मन से जो पर कारज में अपना जन्म बिताता है ।
पुनि स्वदेश बन्धुन प्रसन्न लखि जिसका मन हरखाता है ।*

चलो अब लाला लाजपत से मिलैं देखिये उन्होंने क्या तै किया है ( सब गये )

## पुस्तक परीक्षा ।

### ( सुन्दर सरोजनी )

यह एक संयोगान्त उपन्यास राम नगर ( चम्पारन ) राज्य के श्रीयुत पं० देवीप्रसाद शर्मा उपध्याय द्वारा विरचित और प्रकाशित । इसमें प्राकृतिक मनोहरता, प्रेम, मैत्री आदि का वर्णन है । इस पुस्तक को लोगों ने कितना पसन्द किया है । इसका प्रमाण यही है कि इसके दूसरे संस्करण होने की नौबत हुई । इसके सिवाय इसमें दो रंगीन ग्लेज़ुड चित्र हैं एक पुस्तक की नायिका सरोजनी का दूसरा राम नगर चम्पारन के राजा का । उक्त महाराजा का चित्र इस पुस्तक के साथ लगाने में ग्रन्थकर्ता ने पुस्तक के पढ़ने वालों का क्या लाभ समझा हम नहीं कह सकते । महाराज में कौन सी ऐसी विशेष बात है जिससे पढ़ने वालों को उस चित्र के देखते ही चित्त में कुछ असर उपजेगा पुस्तक मिलने का पता—पं० सिद्धिप्रसाद उपाध्याय भदैनी बनारस सिटी मूल्य ।=)

## नागरी लिपि पुस्तक (सीरीज़)

गौरीशंकर भट्ट विरचित और संपादित—नागरी लिपि में खुशखत होने के लिये यह सीरीज़ बहुत ही उत्तम है उक्त भट्ट जी ने बड़े परिश्रम से इसे संपादन किया है । नागरी के प्रेमियों को उचित है कि इन्हें सहायता दे इनका उत्साह बढ़ावें । यह सीरीज़ ४ हिस्सों में है मूल्य चारों का ।) है पारदर्शी स्लेट परमोपयोगी वस्तु का मूल्य ॥) है मिलने का पता मसवानपुर कानपूर—गौरीशंकर भट्ट ।

* ( प्रदीप की जि०-२९ अगस्त के अंक में देखो ) ।

## नृसिंह।

उपरोक्त नाम का मासिक पत्र श्री अम्बिकाप्रसाद वाजपेयी के सम्पादकत्व में कलकत्ते से निकलता है। इसका पांचवां अंक मेरे पास है जिसमें लोक मान्य तिलक महाराज का एक चित्र तथा उनके चरित्र का प्रारंभ इस संख्या से हुआ है और टुकड़ा २ करके इनकी पूरी जीवनी विस्तार पूर्वक देने की इस पत्र ने कमर बांधी है। लेख इसमें बड़े ही उत्कट रहते हैं। राजनैतिक विषय के नित्य नये जितने पत्र निकलें अच्छा है। इस पत्र का कागद तथा सफ़ाई आदि का मोहनी पन विदेशी होने से अवश्य अश्रद्धेय है। आशा है यह पत्र गरम दल का हो अपने कर्तव्य पर ध्यान देगा। पता मैनेजर "नृसिंह" नं० १२-३ वासा धोबा पाड़ा स्ट्रीट (जोड़ा सांको) कलकत्ता वार्षिक मूल्य २)

## ब्रह्मद्रोह का फल और होली में भेंट।

काशी निवासी मास्टर मुकुन्दलाल साकिन बुला नारा बनारस ने निज युक्ति से बनाकर प्रकाश किया। इन दोनों पुस्तकों में तुक बन्दियां हैं पर तारीफ़ है कि पूरी किताबें पढ़जाइये पुस्तकों में क्या है और उन तुक बन्दियों के क्या मतलब है न समझ पड़ेगा। मूल्य -)॥ में दोनों पुस्तकें।

## मुहिब्ब हिन्द।

इस छोटी सी पुस्तक में देशभक्ति के चुने हुये बहुत से गान का संग्रह है। गीतें एक से एक बढ़ कर हैं हर एक देशभक्त को इस पुस्तक को अपने पास रखना चाहिये और इसका प्रचार सब को करना उचित है २५ या ३० कापियां मंगा लोगों में बांट हर एक को देश भक्त बनाना चाहिये। मूल्य फी पुस्तक )॥ अधिक लेने से कुछ किफ़ायत पड़ेगी पता मुन्शी गुरुप्रसाद मीतसिमगंज इलाहाबाद।

## लाजपत महिमा।

एक हज़ार में कुछ थोड़ी ही सी बच रही है। लाजपत राय जी के भक्तों को अवश्य इसे लेकर उनके उपदेशमय लेख पढ़ भारत की उन्नति पर कटिबद्ध हो जांय। मूल्य =) है पता—महादेव भट्ट अहियापूर—प्रयाग

R. E. G. D. No. 308.

# हिन्दी प्रदीप

शुभ सरस देश सनेह पूरित प्रगट ह्वै आनन्द भरै।
बचि दुसह दुरजन वायु सों मणिदीप समथिर नहिं टरै॥
सूझै विवेक विचार उन्नति कुमति सब यामे जरै।
हिन्दी प्रदीप प्रकाशि मूरखतादि भारत तम हरै॥

मार्च सन् १९०८

मासिक पत्र

जि० ३० सं० ३

सम्पादक और प्रकाशक, पं० बालकृष्ण भट्ट

## विषय सूची।



वार्षिक मूल्य २॥)     प्रति संख्या ≈)

अभ्युदय प्रेस, प्रयाग में मुद्रित हुआ।

-:॥ श्री ॥:-

# हिन्दी प्रदीप

जिल्द ३० | मार्च सन् १९०८ ई० | सं० ३

## चूकते ही गए ।

इसमें सन्देह नहीं गवर्मेंट ने बड़ी हिकमत अमली से हिन्दुस्तान को हस्तगत किया पर आरम्भ ही से चूक होती गई । यद्यपि वह चूक चूक न थी वरन वह भी उसी हिकमत अमली का एक हिस्सा था । किन्तु कहावत है । "मेरे मन कुछ और है कर्ता के कुछ और "। जो कुछ भूल भी बन पड़ी वह अपने ही फ़ायदे की दृष्टि से । जैसा जब यहां सरकारी राज्य स्थापित हुआ तब दफ़्तरों में काम करने वाले अल्पवेतन में न मिलते थे गोरे यूरोपियनों को बड़ी तनख़ाहें देनी पड़ती थी इस लिये शिक्षा विभाग स्थापित किया गया और थोड़ी तनख़ाह दे बड़े से बड़ा काम यहां वालों से निकलने लगा ।

"विद्या नृप युवती लता ये न लखैं कुल जात ।
जो जाके निकटै बसै ताही सो लपटात ॥"

शिक्षा का बीज जो बोया गया वह पीछे इतना फबका और बढ़ा कि इल्म की हर एक शाख़ में और विद्या के प्रत्येक विभाग में एक से एक चढ़ बढ़ कर योग्यता काबिल और आलिम फ़ाज़िल निकलने लगे । यहां तक कि बहुधा "कम्पिटीशन" होड़ या पणबन्ध में अङ्गरेज़ों के भी आगे बढ़ गये । जो आजन्म परिश्रम करते हैं और जो अङ्गरेज़ी अपनी

निज की भाषा है उसमें भी इनको हिन्दुस्तानियों के मुक़ाबिले कभी २ दब जाना पड़ा है। अब तालीम को घटाने की सब २ कोशिशें हो रही हैं और भीतरी भाव यही मालूम होता है कि हम हिन्दुस्तान को उसी जेहालत की हालत में फिर उतार लावें जिस हालत में हमने इसे प्रारम्भ में पाया था पर वह अब कैसे हो सकता है। जब जिसका ज़ायक़ा जिसे मिल जाता है तो वह मिठाई उसके मुंह लग जाती है फिर छुटाये नहीं छुटती। शिक्षा का स्वाद हम लोग पा गये अब अपने निज का जातीय विद्यालय National Schools and National Colleges जहां तहां देश के प्रत्येक विभाग में स्थापित होने की फ़िकिर हो रही है और जल्द ऐसा समय आने वाला है कि बड़े से बड़े विद्वान् जातीय शिक्षा के क्रम पर तैय्यार हो देश को उन्नति के सोपान पर चढ़ाय लावेंगे।

देशके एक छोर से दूसरे तक रेल दौड़ा दी गई एक २ छोटे से छोटे शहर और गावों तक रेल दौड़ गई जिसमें रालीब्रदर को खेतिहरों के एक २ खेत से अन्न ढो विलायत पहुंचाने का सुबीता हो और सफ़र में मुसाफिरों का जो कुछ धन देश का देश ही में रह जाता था वह सब रेल के किराये के द्वारा विलायत पहुंचे। रोज़गारियों को केवल हम्माली की भांत बट्टा और दलाली मात्र शेष रही मुनाफ़ा सब रेल के किरायों ही में चला जाता है। दूसरे फ़ौज इत्यादि के पहुंचाने में सुबीता होगया। ऐसे २ न जानिये कितने फ़ाइदे सोच रेल यहां चलाई गई। यह कौन जानता था कि इससे दूर से दूर देश के रहने वाले आपस में मिल एक दूसरे के साथ हमदर्दी प्रेम और मैत्री प्रकाश करेंगे देशानुराग महा पादप की जड़ परस्पर सहानुभूति के अमृत जल से सिंचित होगी। पेशावर से केपकमोरिन तक बन्देमातरम् की जय ध्वनि से गूंज उठेगा। कहां मन्दराज कहां लाहौर मदरासी और पंजाबी दोनों गले से गले मिल अपने २ दुःख की कहानी एक दूसरे से कह छाती ठंढी करेंगे।

जब देखा विलाइत में गोरे इतने नहीं हैं कि शैतान की आंत सा इतना बड़ा देश केवल उन्हीं के भरोसे अधिकार में आ सके इस लिये हिन्दु

स्तानियों की फ़ौज भोजपुरिये, वैसवार, सिक्ख, रुहिल्ले और भोटियों की तैय्यार की और हिन्दुस्तानियों ही की मदत से हिन्दुस्तान को फ़तह किया पीछे यह फ़िकर हुई कि कहीं ऐसा न हो कि फ़ौज के इन लोगों में जागृति पहुंचे और ये चैतन्य हो अपना देश और अपना स्वत्व पहँचानने लग जांय तब तो हमारी स्थिति में बाधा पहुंचेगी।

अस्तु वह सब तो पुरानी दन्त कथा हो गई थी हाल: में कर्ज़न महोदय ने बङ्गाल के दो टुकड़े कर मानों उस भूल में रेशम की गट्ठी पर पानी पड़ जाने के समान हो गया। कर्ज़न साहब अपनी पालिटिक्स प्रवीणता के घमण्ड में यह कभी नहीं समझे थे कि हमारी इस कुटिल नीति का ऐसा बुरा परिणाम होगा बङ्गाली जो केवल बक २ करना जानते हैं क्या इतना ज़ोर पकड़ेंगे। अस्तु बङ्गाल को दो टुकड़े करना भूल समझ प्रजा के आन्दोलन पर फिर उसे एक कर देना था पर सो कैसे हो सकता है। अपनी भूल पर पछताना, Yield-किये हुये को त्यागना, तो वे जानते ही नहीं। अमेरिका ऐसा भारी देश खो बैठे पर अपनी ज़िद्द न छोड़ा। "सर्वनाशे समुत्पन्ने अर्द्धं त्यजति पण्डितः" वाली नीति को ये पण्डिताई नहीं बल्कि मूर्खता मानते हैं। दूसरे पृथ्वी मण्डल भर में अनुपम इस स्वर्ण खण्ड पर इनका दांत बूड़ गया है इस कामधेनु को जहां तक हो सके दुहते चले जांय धेनु के दुर्बल बछड़ों को उस दूध से जैसे बने वैसे महरूम रक्खें। इसी के अनुसार बहुत दिनों तक झूंठी उम्मेद और दिलासों ही में रक्खा अब डाट डपट और लाल पीली आंख दिखला अपना स्वार्थ निकाला चाहते हैं पर हम से चूक पर चूक होती गई और हो रही है सो कभी स्वीकार न करेंगे।

---

# कमंडल में मंडल।

लेखक—ठाकुर सूर्यकुमार वर्मा

**सर्वे यत्र विनेतारः सर्वे पंडित मानिनः।**
**सर्वे महत्वमिच्छन्ति तद्वृन्दमवसीदति॥**

जिस देश के लोग अपनी मर्यादा त्याग करनी अकरनी सब कुछ करते हैं उस देश का अवश्य अधःपात हो जाता है। उपरोक्त श्लोक में कवि ने ठीक कहा है कि जहां सब ही नेता हैं, सब लोग अपने को पंडित समझते हैं, और सब लोग अपनी अपनी बड़ाई की इच्छा करते हैं वह समूह अवश्य दुःख भोगता है। यही दशा आज कल हमारे देश की हो रही है। जिसे देखो वही देश के दस पांच आदमियों की सहानुभूति प्राप्त करके नेता और प्रतिनिधि बन जाता है। एक वह समय था कि देश का सच्चा भक्त और नेता बनने के लिए लोगों को अपना तन, मन, धन, सर्वस्व अर्पण करना पड़ता था, देशभक्त ही सच्चा राजभक्त बन सकता था; परन्तु आजकल समय बड़ा विलक्षण है। देश चाहे रसातल के और भी नीचे चला जाय, देशवासी चाहे एक एक दाने को तवाह हों, भाई भाई का प्राण लेने को उतारू रहेगा। कहां तक कहें अपने घर की स्त्रियों तक को राजपाट की अतुल सामिग्री रहते भी चाहे एक छदाम न दें और वे व्याकुल होकर अन्य पुरुषों का मुख ताकती फिरें परन्तु राजभक्ति के मद में चूर हां हज़ूर हां हज़ूर कहने को सदा तय्यार रहेंगे। गतवर्ष भारतवासियों को उद्दण्ड हाकिमों की कृपा से बहुत कुछ कष्ट पहुंचे। उन्हीं कष्टों को निवारण करने के लिए भारत की प्रजा जो बहुत दिनों से घोर निद्रा में सो रही थी जाग उठी और देखा कि श्रीमान् सप्तम एडवर्ड की सरल और सीधी साधी प्रजा पर उनके कुछ नौकर अत्याचार कर रहे हैं। अतएव अत्याचारों से बचने के लिए लोगों ने पुकार मचाई। प्रजा क्यों पुकार रही है इस पर तो कुछ ध्यान न दिया गया; स्वार्थी लोगों की झूंठी रिपोर्टों से ही यह अनुमान कर लिया कि

भारत में शीघ्र ही बलवा होने वाला है। बस इसी घबराहट में दो एक देशभक्तों को देश निष्काशन का दंड दिया गया। कई एक प्रतिष्ठित पुरुषों को कई मास तक हवालात में डाल सड़ाया और बहुतों को कठिन कारागृह वास का दंड देकर जेल में नाना प्रकार की यातनायें पहुंचाई गईं। इस अवसर को ग़नीमत जान, पदवी दान पाने वालों ने भी अपना मतलब बनाया। बरसों ख़ुशामद करते डाली पहुंचाते और हां हजूर हां हजूर कहते तब कहीं एंग्लो-इण्डियन देवता प्रसन्न होते थे और पदवी दान मिलता था। परन्तु इस समय पर तो केवल राजभक्ति, राजभक्ति का शब्द उच्चारण करने से ही पुरस्कार और पदवियों का ढेर प्राप्त हो जाने की सम्भावना थी। अतएव 'शुभस्य शीघ्रम्' के अनुसार राजभक्ति का सहारा लेकर भिन्न२ जाति और सम्प्रदाय के लोग अपनी अपनी जाति धर्म और सम्प्रदाय के प्रतिनिधि बन कर गवर्मेंट की सेवा में उपस्थित हुए और देशभक्त, देश हितैषियों को गवर्मेंट का शत्रु बतला कर उन्होंने अपने तईं राजभक्त प्रगट किया। गवर्मेंट झूंठे समाचारों से भयभीत हो ही रही थी कि इतने में इन पदवी दान देने वालों को पाकर बड़ी प्रसन्न हुई। 'डूबते को तिनके का सहारा होता है' यही दशा गवर्मेंट की हुई। सिक्ख, राजपूत, तालुक़ेदार और हमारे मुसलमान भाई सबों ने अपनी अपनी बारी से राजभक्ति का सहारा ले गवर्मेंट को प्रसन्न किया और अपने लिए पदवी दान पाने का रास्ता साफ़ कर लिया। सब लोग तो बाज़ी मार ले गये परन्तु भारत का स्तम्भ धर्म महामंडल अपने कमण्डल में ही मग्न था कि अचानक उसे भी राजभक्ति की सुधि आई। कृष्णभक्ति, शिवभक्ति, भगवानभक्ति इत्यादि से अपनी तृप्ति होती न देख उसने राजभक्ति का सहारा लिया। मंडल अपने कमंडल को फोड़ कर बाहर आया और आते ही बड़े लाट के दर्शन किये। मंडल के प्रतिनिधियों ने बड़े लाट से जाकर जो कुछ कहा उसका सार यह है। 'वृटिश राज्य में हम लोगों को धार्मिक स्वतंत्रता प्राप्त है। गवर्मेंट शिक्षा के प्रचार का खूब ही उद्योग कर रही है। हमारे उपदेशक घूम घूम

देश में धर्म शिक्षा प्रचार कर रहे हैं और हम सच्चे राजभक्त हैं'। भारत धर्म महामंडल के प्रतिनिधि गण लाट साहब से मांगते क्या हैं ? केवल यह कि सनातन धर्मी हिंदुओं के लिए समस्त स्कूलों और कालिजों में महामंडल द्वारा धार्मिक शिक्षा की व्यवस्था की जाय !

पाठकगण ! भारत धर्म महामंडल के नेताओं ने अपने द्वारा स्कूल और कालिजों में धार्मिक शिक्षा दिए जाने की आज्ञा मांगी । यदि हमारी स्मरणशक्ति हमें धोखा नहीं देती तो हम कह सकते हैं कि बहुत दिन हुए गवर्मेंट ने इस विषय में आज्ञा दे रक्खी है कि जिस समुदाय के लोग अपने बालकों को धार्मिक शिक्षा देना चाहें वे अपना प्रबंध स्कूल और कालिजों में कर सकते हैं। लड़कों को घंटे आध घंटे का समय इसके लिए दिया जाया करेगा कि वे स्कूलों में ही धार्मिक शिक्षा प्राप्त कर सकें । यदि महामंडल के अधिकारी इस बात को जानना चाहें तो वे शिक्षा विभाग के डाइरेक्टर से इस विषय में लिखा पढ़ी करके जान सकते हैं । फिर जब भारत धर्म मंडल में स्वतंत्र नृपतिगण, उच्च-कर्मचारी और धनी नामी पुरुष संयुक्त हैं तब क्या मंडल हिन्दू धर्म की रक्षा के लिए देश में धार्मिक शिक्षा का प्रबन्ध नहीं कर सकता ? परन्तु उसे तो जाकर लाट साहब के सम्मुख खुशामद के साथ साथ कुछ कहना था । क्या धर्म महामंडल का यह कर्तव्य नहीं था कि वह लाट साहब से कहता कि इस घोर अकाल में हिन्दू बालकों की रक्षा कीजिये ? जिस हिन्दू धर्म में, गो ब्राह्मण की रक्षा करना परम धर्म माना गया है उसी माननीय गऊ माता की गर्दन पर नित्य कसाइयों की छुरी चलती हैं क्या मंडल लाट साहब से गो बध बन्द करने के लिए विनय नहीं कर सकता था ? विदेशी अपवित्र चीनी के देश में आने से हिन्दू धर्म नष्ट भ्रष्ट हो रहा है वह देश में न लाई जाय, क्या हिन्दू धर्म की रक्षा के लिए इस विषय पर लाट साहब से नहीं कहा जा सकता था। परन्तु जब गाय के मांस से गोरों की उदर दुरी भरी जाती है, विदेशी चीनी के प्रचार से अंगरेज़ व्यापारियों का घर भरता है, तब भला इस प्रकार की बातें कह अपने

प्रभु को अप्रसन्न कर अपने स्वार्थ में बाधा डालने की कौन मूर्ख चेष्टा करेगा ? राजभक्ति की ढाल लेकर गवर्मेंट का मनोरंजन करने के लिए पदवी पाने की अभिलाषा से जो लोग जाते हैं वे भला देश की भलाई की सच्ची बात अथवा हिन्दूधर्म को नष्ट होने से बचाने के लिए कोई ऐसी बात जिससे उनके कर्ता, धर्ता विधाता, अप्रसन्न हों कब कह सकते हैं ? गवर्मेंट को एक तो यों हीं एंग्लो-इंडियन देवताओं की कृपा से भारतवासियों की सच्ची दशा का ज्ञान नहीं होने पाता दूसरे इन पदवी पाने के भूखे लोगों के कारण जो देश के शत्रु हैं और भी हमारी सच्ची दशा को गवर्मेंट नहीं जान पाती । हज़ारों आदमी नित्य प्लेग के कारण कराल काल के गाल में चले जा रहे हैं, हज़ारों अन्न,वस्त्र न मिलने के कारण तंग और भूखे अपने प्राणों को तड़प तड़प कर त्याग रहे हैं परन्तु उनकी ओर इस मंडल का ध्यान कभी आकर्षित नहीं हुआ । देशवासियों के मांस रहित अस्थि शेष शरीर को देख कर मंडल के नेताओं का कभी कलेजा नहीं पिघला । कलेजा पिघला भी तो राजभक्ति के लिए ! अब मंडल के नेताओं के हृदय में गो ब्राह्मण भक्ति के बजाय राजभक्ति ने स्थान पाया है ! हम राजभक्ति को बुरा नहीं समझते । राजभक्ति करना हमारे सनातन हिन्दू धर्म का मुख्य अंग है । परन्तु जो राजा हमारे धर्म की रक्षा नहीं करता, धर्म कार्य करने में हमें सहायता नहीं पहुंचाता, उसके प्रति सच्ची भक्ति हमारे हृदय में कैसे उत्पन्न हो सकती है । हां, इस समय अंगरेज़ लोग विद्या, बुद्धि और बल में हम से बड़े हैं और इसी कारण हमारे ऊपर राज्य कर रहे हैं परन्तु उनके प्रति हमारे हृदय में सच्ची भक्ति तभी स्थिर रह सकती है जब वे हमारे धर्म की रक्षा करें । हमारे यहां धर्मशास्त्र में लिखा भी है:-

मोहाद्राजा स्वराष्ट्रं यः कर्षयत्यनवेक्षया ।
सोऽचिराद्भ्रश्यते राज्या ज्जीविताच्च सबान्धवः ॥
शरीर कर्षणात्प्राणाः क्षीयन्ते प्राणिनां यथा ।
तथा राज्ञा मपि प्राणाः क्षीयन्ते राष्ट्र कर्षणात् ॥

जो राजा स्वार्थ में फँस कर अपने शासित मनुष्यों को शास्त्र निषिद्ध क्रम पर प्रजा से धन बटोरता है अथवा मारने आदि कष्टों से पीड़ा पहुंचाता है वह शीघ्र ही प्रजा के कोप और अधर्म युक्त राज्य करने से पुत्रादि सहित नष्ट भ्रष्ट हो जाता है। जिस प्रकार आहारादि के रोकने से शरीर सूख जाता है और प्राण क्षीण हो जाते हैं उसी प्रकार राजाओं को भी अपने राज्य की प्रजा को पीड़ा पहुचाने से प्रजा के असन्तोष से राजा अपने राज्य से च्युत हो जाता है। अतएव राजा को अपने शरीर के समान ही अपने देश और अपनी प्रजा की रक्षा करनी चाहिए। वर्तमान समय में राजा के द्वारा हमारी रक्षा क्या हो रही है इसे भी सुनिए। हज़ारों आदमी अन्न के मारे बिलबिला कर अपने प्राण छोड़ रहे हैं। देश में घोर अकाल पड़ रहा है परन्तु गोरे व्यापारी अपने स्वार्थ के कारण इस देश के अन्न को विदेश ढोए लिये जा रहे हैं॥ गत मास में ही कई लाख मन अन्न विदेश गया है। ऐसे कठिन समय में अन्न विदेश से यहां आना चाहिये अथवा जाना चाहिये इस बात का निर्णय पक्षपात और स्वार्थ की ऐनक को उतार कर हमारे देश के पदवी पाने के इच्छुक और हमारे प्रभु दोनों करलें। इस के अतिरिक्त देश में गोबध होने के कारण हल जोतने के लिए बैलों का मिलना कठिन हो गया है। जो बैल पहले दस रुपया में आसानी से मिल सकता था वह अब चालीस पचास में भी कठिनता से मिलता है। क्या राजा का यह कर्तव्य नहीं है कि वह इस अन्याय को रोक कर देश दशा सुधारने में सहायक हो? राजभक्ति का नक्कारा बजाया जाय तो क्या 'उघरहिं अन्त न होहि निबाहू' की कहावत चरितार्थ न होगी। जिस धर्म और जाति की पवित्र इमारत जर्जर हो रही है उसकी रक्षा का उपाय न करके कोरी राजभक्ति का डंका पीटने से क्या कभी कल्याण हो सकता है? राजा की प्रजा को प्रसन्न करना ही सच्ची राजभक्ति है। हमें यहां पर राजभक्त सेवकों से केवल एक ही बात और कहना है कि हमको श्रीमान् महाराज सप्तम एडवर्ड के भक्त होना चाहिये अथवा उनके चाकरों के या अंग्रेज़ मात्र के भक्त बनने की आवश्यकता.

होकर प्रजा पुकार मचावे तो आश्चर्य ही क्या है? हम देखते हैं कि बहुधा कर्मचारी हमारे ऊपर मनमाना अत्याचार करते हैं परन्तु ज्योंहीं हम अपनी ज़बान बाहर निकालते हैं त्योंहीं हम राजविद्रोही कह कर पकड़ लिए जाते हैं और कठिन से कठिन दुर्दशा भोगते हैं। यहां तक कि यदि हम किसी गोरे अथवा अधगोरे के अन्याय और अत्याचार का समाचार गवर्मेंट की सेवा में लेकर जाते हैं तो भी हमारी गणना राजविद्रोहियों में की जाती है। इस कारण हम यह नहीं समझ सकते कि हम श्रीमान् सप्तम एडवर्ड की प्रजा हैं अथवा उनके नौकरों या अंगरेज़ जाति मात्र के हम दास हैं? यदि अत्याचारी के अत्याचार को भी रोकना राजविद्रोह है तो फिर भारतवासी राजविद्रोह के पंजे से किसी प्रकार बच नहीं सकते! भारत के समान विलक्षण शासन की प्रणाली देखने, की कौन कहे सुनने अथवा पढ़ने में भी नहीं आई। जिस देश का शासन ऊंचे से लेकर नीचे तक नौकरों द्वारा होता है उसकी दुर्दशा का ठिकाना क्या? भारत सचिव से लेकर वायसराय और कलक्टर तथा पुलिस का एक प्यून तक सब ही हमारे राजा हैं। नौकर ही आज्ञा देता है और नौकर ही आज्ञा पालन करता है; कैसा अद्भुत शासन है? राजा द्वारा देश का शासन सुना गया था, प्रजा द्वारा देश का शासन होता है यह भी सुना है; परन्तु नौकरों द्वारा राजशासन होता है यह बात केवल इसी देश में देखी जाती है। इसी कारण नौकरों के अत्याचार से पीड़ित होने से जब प्रजा पुकार मचाती है तब वे अप्रसन्न हो जाते हैं और तुरन्त देश देशान्तरों में यह समाचार फैल जाता कि भारत की प्रजा राजविद्रोह फैलाना चाहती है। परन्तु भारत की भीतरी दशा देखी जाय तो राजविद्रोह का चिन्ह तक नहीं पाया जाता। गत वर्ष जिस विद्रोह की सूचना विलायत भेजी गई थी उसका सच्चा समाचार पार्लियामेंट के कई एक मेम्बर अपनी आखों देख गए हैं और उन्होंने विलायत वासियों को सच्चा समाचार बता कर उनके भय को दूर किया है।

अन्त में हम अपने राजभक्ति के मद में मतवाले धर्म मंडल, तथा अन्य सभा-समाज के नेताओं, सेठ साहूकारों और राजा महाराजाओं से जो केवल पदवी दान पाने के भूखे हैं सविनय प्रार्थना करते हैं कि वे अन्य प्रकार से एङ्गलो-इंडियन देवताओं को प्रसन्न करके पदवी दान प्राप्त करें। देशभक्तों को बदनाम करके राजभक्ति की ओट में शिकार न खेलें और देश की उन्नति के कार्य में बाधा न डालें। भारतीय प्रजा जो आज कल घोर निद्रा से जाग उठी है उसे देश का कार्य करने दें। उसके उन्नति के मार्ग में कांटे न बोवें।

हिन्दी प्रदीप—हम तो बहुत दिनों से तै कर चुके हैं कि यह मंडल भी एक मस्तक का शूल है। महा दांभिकों का दल परदे की आड़ में शिकार कर रहा है इससे देश रसातल में न धसे इसी को ग़नीमत समझो। इससे कुछ उपकार की आशा करना केवल मृग तृष्णा है।

---

## कौलीन्य।

कुलीनता क्या है सो हम पीछे दिखावेंगे संप्रति यह दिखलाते हैं कि मनुष्य कुलीनों की श्रेणी से क्योंकर गिरजाता है मनुने कहा है:—

"कुविवाहैः क्रिया लोपैर्वेदानध्ययनेन च।
कुलान्यकुलतां यान्ति ब्राह्मणातिक्रमेण च॥"

नीच कुलमें विवाह से, संस्कारों के न होने से, वेद आदि विद्या न पढ़ने से, ब्राह्मणों का तिरस्कार करने से, ऊंचाकुल भी नीचा हो जाता है। यह तो हई है पर अभी तक "धनेन कुलम्" यही माना जाता है। रुपया होने से नीचा से नीचा कुल भी कुलीन मान लिया जाता है। परन्तु अब थोड़े घने पढ़े लिखे "चरित्रेण कुलम्" मानने लगे हैं। उचित मालूम होता है कि कुलीनता की परख में चरित्र की कसौटी से बढ़ कर धन तथा विद्या नहीं होसकती। बहुधा ऐसा भी देखा गया है कि धनके मद में मदोन्मत्तों का कुल रुपया निकल जाने से फिर न जानिये कहां बिलाय गया उनके कुलीनता की टिर्र बिल्कुल छार में

मिल गई उस बनावटी कुल का छोर हो गया पर चरित्रवान् कुलीन का चरित्र के साथ कुल का कुछ ऐसा घनिष्ट संबन्ध रहा है कि चरित्रवान् कुलीन न हो ऐसा बहुत कम देखा गया है। कसौटी के समय सच्चा कुलीन वही निकलेगा जो चरित्र संपन्न है और चरित्रवान् अवश्यही कुलीन भी होगा। सच तो यह है कि चरित्रवान् के माथे पर कोई टिकट नहीं लगा रहता जो प्रगट करे कि यह चरित्र संपन्न है चरित्र आदमी का उसके वर्ताव से नमूद होता है। बहुधा नीच कुल वालों में ऐसे २ चरित्रवान् पाये गये हैं कि बड़े २ उच्च कुल वाले कसौटी के समय उसके मुक़ाबिले शरमा गये हैं और वह चरित्र पालन के अपने दृढ़ सिद्धान्त से नहीं डिगा। परिणाम में वह नीच कुल वाला कुलीनों की श्रेणी में शामिल कर लिया गया। तो सिद्ध हुआ यह कुलीनता केवल चरित्र पर निर्भर है। कहावत है "असिल से खतरा नहीं कमअसिल से बफा नहीं" जो शुद्ध रजवीर्य के हैं उन से गलती या बुराई की बहुधा कम संभावना रहती है जो ऐसे हैं कि "मा पिलंगिनी बाप पिलंग तिनके लड़के रंगबिरंग" ऐसों से भलाई की कुछ आशा रखना भी भूल है। भगवद्गीता का वाक्य है।

"उत्साद्यन्ते जातिधर्माः कुलधर्माश्चशाश्वताः ।
उत्सन्नकुलधर्माणां मनुष्याणां जनार्दन ॥
नरके नियतं बासो भवतीत्यनुसुश्रुम ।"

वर्ण संकर पैदा करने वाले कुलघालक होते हैं इसलिए कि जो औलाद पैदा होती है वह अपने जाति का परंपरा गत सनातन धर्म और कुल धर्म अर्थात् अपने कुल की रीति नीति का क्रम सब बिगाड़ डालती हैं। अपने कुलधर्म को त्यागने वाले या बिगाड़ने वालों को अवश्य नरकवास होता है। इसी बुनियाद पर कदाचित् मनु ने भी ऐसा लिखा है।

"शूद्रावेदी पतत्यत्रे रुतथ्यतनयस्यच ।
शौनकस्य सुतोत्पत्या तदपत्यतया भृगोः"

अत्रि का मत है कि ब्राह्मण शूद्रा स्त्री का साथ कर पतित हो जाता है उतथ्य तनय वृहस्पति का भी यही मत है। शौनक कहते हैं संसर्ग मात्र से नहीं वरन उसमें पुत्र पैदा होने से ब्राह्मण पतित होता है। भृगु का मत है तब तक भी उसका ब्राह्मणत्व नहीं जाता जब पुत्र के भी पुत्र हुआ तब वह ब्राह्मण फिर ब्राह्मण न रहा अर्थात् तब वह मानो वर्ण शंकर कुल का स्थापित करने वाला होगया और ब्राह्मणता या क्षत्रियता उसमें से सर्वथा सिधार गई। सच तो यों है कि कुलीनता चरित्र ही की बुनियाद पर क़ायम हुई है कुल के आदि पुरुष बड़े ही सच्चरित्र और ऋषि तुल्य जीवन के थे उनके वंशज कुलीन कहलाये। कभी कई पीढ़ी तक उस तपस्वी आदि पुरुष की स्थापित मर्यादा कुल में बराबर बनी रहती है औलाद में कोई २ उस मर्यादा को, अपने पवित्र चरित्र से बढ़ा देते हैं ऐसे लोग कुल भूषण या कुल दीपक कहे जाते हैं। किसी कुपुत्र ने उस मर्यादा को अपने घिनौने बर्ताव से हटा दिया तो वह कुल पांसन कुलाङ्गार और कुल का कुठार कहा जाता है। पर कुलीनता की ऐंठन कुछ न कुछ उसमें भी अवश्य रहती ही है। यह ऐंठन एक प्रकार समाज के लिए तो हानिकारक है पर उस पुरुष विशेष को लाभदायक ज़रूर है। इसलिए कि उस ऐंठन के सबब कुचरित्र से कुचरित्र भी अपने निन्दित घिनौने काम से कभी को पछताता हुआ घिनोने काम से बचता है और अपने कुलका खयाल कर पूर्वजों के सदृश होने की चेष्टा करता है। कुलीन से संसार के उपकार की जितनी सम्भावना रहती है उतनी ही नीच कुल वाले से हानि की। विलायत में जब तक की कंपटीटिव सिविल सरविस" की प्रथा नहीं निकली थी तब तक जो हाकिम यहां आते थे कुलीन घराने के होते थे अब इस प्रथा के निकलने से जो हमारे शासक नियत होकर आते हैं सो जिस क्रम के होते हैं प्रगट है। कोई महीना खाली नहीं बीतता कि पत्रों में ऐसों की करतूत न छपती हो और संपादकों को अपनी लेखनी को दौड़ाने के लिए मैदान न मिल जाता हो तस्मात् कौलीन्य सर्वथा भला है यदि उसके क्रम का पालन हो सके।

# ईश्वर से विनय ।

सह रहा बज्र आघात हुआ आरत है ।
जगदीश तुम्हारी शरन दीन भारत है ॥ टेक ॥
हे विश्वम्भर तुम्हीं विश्व उपजाया ।
फिर क्यों भारत से तुमने नेह घटाया ॥
अति मोह जाल में फँसा ख़ूब भटकाया ।
दुख नहीं किसी ने इसका तनक बँटाया ॥
यह प्लेग दुष्ट नित लाखन नर मारत है ।
जगदीश तुम्हारी शरन दीन भारत है ॥ १ ॥
जिस समय दुष्ट यह प्लेग जहां जाता है ।
फिर वहां प्रेम जड़ सहित नाश पाता है ॥
सब तजैं परस्पर मेल घटै नाता है ।
नहिं कोइ किसी के पास तहां आता है ॥
ये मिले जन्म के पल में मन फारत है ॥
जगदीश तुम्हारी शरन दीन भारत है ॥ २ ॥
अब पड़ा हाय दुर्भिक्ष वृष्टि बिनु भारी ।
चहुं ओर कुलाहल करें दुखी नर नारी ॥
ये नई बिपति पै बिपति हाय क्यों डारी ॥
सब अन्न भेजि परदेश सुखी ब्यौपारी ॥
दिन दिन यह पापी घोर रूप धारत है ।
जगदीश तुम्हारी शरन दीन भारत है ॥ ३ ॥
बिनु अन्न पेड़ की छाल पीस खाते हैं ।
दिन रात परिश्रम करें न सुख पाते हैं ॥
अन्न २ करि हाय ! प्राण जाते हैं ।
नहिं तौभी इधर धनवान ध्यान लाते हैं ॥
नहिं कोई बँधावै धीर पीर टारत है ।
जगदीश तुम्हारी शरन दीन भारत है ॥ ४ ॥
सब साग अलौना खाय उदर भरते हैं ।

इस घोर शीत में वस्त्र हीन फिरते हैं ॥
निशि ताप २ संताप सहा करते हैं।
सब तलफ़ २ बे मौत हाय ! मरते हैं ॥
यह देखि दीन दुर्दशा हियो हारत है।
जगदीश तुम्हारी शरन दीन भारत है ॥ ५ ॥
सब युवा बाल और वृद्ध दीन गोहरावें।
नित कोटिन संकट सहें चैन नहिं पावें ॥
नहिं विष भी सस्ता मिलै खाय सो जावें।
इस शीत क्षुधा से कैसे प्राण बचावें ॥
यह हाय ! दुष्ट दुर्भिक्ष प्रलय डारत है।
जगदीश तुम्हारी शरन दीन भारत है ॥ ६ ॥
प्रभु सदा आप हो धेनु विप्र रखवारे।
तुम दीन बंधु दुख दीन जनों के टारे ॥
किस घोर पाप से तुमने हाय ! बिसारे।
बिनु कृपा आपकी भटकें दीन बिचारे ॥
यह काल व्याल बन दुख में विष झारत है।
जगदीश तुम्हारी शरन दीन भारत है ॥ ७ ॥
प्रभु आप जगत पति क्षमा पाप सब कीजे।
अब डूबत हैं मझधार बांह गहि लीजै ॥
दुख बहुत दिनों से सहा अभय कर दीजे।
यह सब से प्यारा देश तुम्हारा छीजै ॥
छेदा लाल प्रभू तुम पर सब वारत है।
जगदीश तुम्हारी शरन दीन भारत है ॥ ८ ॥

## कवित्त।

फेरिधों सनाथ होय भारतनिवासी दीन,
आलस की नींद बैर खोय हैं न खोय हैं।
होय के सचेत निज दुर्दशा विचारि कभी,
द्वेष मैल अंतर सो धोय हैं न धोय हैं ॥

तुच्छदास त्यागि मृगतृष्णा की आशा निज;
पौरुष की बेलि कभी बोय हैं न बोय हैं।
पाय के स्वतंत्र सुख कष्ट को बिताय कभी,
चैन सों पसारि पांव सोय हैं न सोय हैं ॥ १ ॥
शरन हैं तुम्हारी सुधि भूले क्यों हमारी दुख,
रैनि दिन भारी टुक ध्यान इत लाइये।
आप ही बचैया कोई पास ना खिवैया यह,
डूबति है नैया प्रभु पार तो लगाइये ॥
कहै तुच्छदास प्रभु दीनन को हरौ त्रास,
सुमति को विकास करि कुमति को नसाइये।
बार २ नाय माथ टेरत हैं अनाथ दीन,
करिके सनाथ प्रभु हांथ तो गहाइये ॥ २ ॥
मीन ज्यों बिहीन जल दीन से कुलीन भये,
व्याकुल मलीन छीन वस्त्रहीन गात हैं।
दांत काढ़ि बात करें आंत में न अन्न जात,
पात छाय पांति २ साग बैठि खात हैं ॥
जाड़े में उघारे गिन तारे हा सकारे करें,
लाखन दुखारे बादि प्यारे प्राण जात हैं।
पास पास घास के बिछौना पै उदास पड़े,
लम्बे उसास लै पतौआ चबात हैं ॥ ३ ॥

छेदालाल।

---

# सूरत की बेडौल सूरत।

## द्वितीय दृश्य का दूसरा गर्भांक

स्थान—सुरेन्द्र के कैम्प की प्रान्त भूमि—दो वालंटियरों का प्रवेश—

पहिला—दोस्त कहो क्या तै पाया— पहले यह तो बतलाओ तुम किस पार्टी के हो—माडरेट या एक्सटीमिस्ट।

दूसरा—मैं दोनों में कोई नहीं हूं और दोनों में हूं। तुमने मसल सुना होगा "जहां देखैं हंडा परात तहां गावैं सारी रात" मैं टाइम सरबर होना सब से अच्छा समझता हूं मुझे तो यह सब दिल बहलाव है। आप जानते हो मेरा नाम उलूकचन्द है मैं दोनों को काठ का उल्लू बनाया चाहता हूं।

प०—तेरा तो नाम ही उलूकचन्द है तब तो ठीक है "यथा नामस्तथागुणः" तो तुम कांग्रेस को निरा तमाशा समझते हो ?

दू—और नहीं क्या तुम्हीं बतलाओ २२ वर्ष कांग्रेस हुई क्या फल सिद्ध हुआ।

प०—अलबत्ता जो ढंग कांग्रेस का अब तक रहा उससे तो गोरे कर्मचारियों की खुशामद के सिवाय देश की वास्तविक भलाई का एक भी तत्व न निकला। भिक्षा मांगने वाले अन्त को भिखारी के भिखारी—भिखारी को धनी पात्र होते कभी किसी ने देखा सुना न होगा। हौसिला तो स्वराज का और मांगना भीख। इसी से तिलक महाराज इसका ढंग बदलना चाहते हैं। वे अपने यत्न में जो कृतकार्य हुये तो देखना कांग्रेस की सूरत ही पलट जायगी इसके मन्तव्य और काररवाइयां स्वराज में मूल मंत्र होंगे।

दू—घामड़चन्द्र तुम कुछ जानते हो ऐसे २ लाख तिलक तीन वार जन्म लें तौभी कुछ नहीं कर सक्ते एक चने ने कभी भार फोड़ा है। मेहता गोखले सरीखे राजनीति विशारद के आगे तिलक को कौन पूछता है इस समय जितने बड़े लोग सबों के ये सिरताज हैं माननीत ज्ञानी मानी सबों के नेता हैं सब लोग इन्हीं के अनुसार चल रहे हैं तब तिलक किस गिनती में रहे।

प०—नहीं मालूम तुम किस खोह में छिपे बैठे रहते हो Politics of the day वर्तमान राजनैतिक आन्दोलन का रंग ढंग क्या है कुछ नहीं जानते। हमारे होनहार नवयुवक मेहता के नाम से चिढ़ते हैं तब उनके सिद्धान्तों से सहमत होना तो दूर रहा। तिलक के सर्वमान्य होने का यही हेतु है कि सुशिक्षित नवयुवक सब इनके अनुयायी हैं।

तिलक महाराज सुरेन्द्र बाबू को साथ लिये इधरही आ रहे हैं तो चलो हम लोग भी अपने २ काम में लगें (दोनों गये)।

सुरेन्द्र—आपका क्या अभिप्राय है सो मैं लालाजी से सुन चुका हूं—आपका कथन सर्वथा उपयुक्त है मैं मानता हूं।

तिलक—मैं चाहता हूं आपस का विरोध न बढ़ने पावे—निरन्तर इस चिन्ता में हूं कि कांग्रेस न रुकने पावे।

सु०—मिलाप मैं करा दूंगा आप निश्चिन्त हो रहिये—पर मालवी से अपनी गरज़ एक वार कह रखिये !

ति०—भेजा है संवाद यदि अवकाश हो उनको—पांच मिनट के लिये यहीं आ जावें मिटे द्विविधा मन को।

(एक वालंटियर का प्रवेश) मालवी फरमाते हैं मैं नित्य क्रिया में निरत हूं अवकाश नेक नहीं देवार्चन में तत्पर हूं।

सु०—वेश आप जांय अब मैं ठीक कर लूंगा जहां तक सम्भव है संदेशा जल्द भेज दूंगा।

ति०—(स्वगत) जान गये यह बेल मड़ये चढ़ने वाली नहीं मालूम होती लाचारी ईश्वरेच्छा (प्रकाश) अच्छा तो मैं आपके विश्वास पर हूं जहां तक हो काम बिगड़ने न पावे (दोनों गये)।

## तीसरा गर्भांक।

स्थान— कानग्रेस पण्डाल

भारत वीराङ्गनाओं का मंगलाचार गान-पानी की कुछ कमी नहीं है हरियाली लहलहाती है। इत्यादि स्वागतकारिणी कमेटी के सभापति त्रिभुवननाथ मालवीय की वक्तृता।

सज्जनो भ्रातृगण और वीराङ्गना भगिनियो महिलागण ! मंगल मूरत आप लोगों के शुभ आगमन से हम सब सूरतवाले दिल की कुल कुदूरत दूरवहाय सच्चे जीसे आपसे निवेदन करते हैं आशा है इसे आप अपने करण कुहर की कोठरी में बन्द न रख हमारे इस कथन को कहीं से

किसी अंश में झूठ न मानोगे। हमारे कई एक माननीय महापुरुषों की प्रेरणा से जब नागपूर के रौडीज़ कांग्रेस में बाधा डालने में सब तरह उद्यत हो गये ( सब ओर से नो नो ) और यह मालूम हुआ कि कांग्रेस अब सदा के लिये टूटा चाहती है २२ वर्ष का पाला पोषा पौधा अब उखड़ा चाहता है। तब हमारे बम्बई के राजा श्रीमान् सर फीरोज़शाह मेहता ने इसका भार अपने ऊपर लिया। आपको शायद यह बात न मालूम हो तो जान रखिये कि हम सब लोग मेहता साहब की क्रीड के पैरोकार हैं जो कुछ वे मंजूर करें उसे हम सबों को मानना ही पड़ता है। बम्बई में जब यह तै पाया कि इस वर्ष कांग्रेस का अधिवेशन सूरत में होगा तब केवल एक महीना रह गया था। ऐसे थोड़े अरसे में जो कुछ बन पड़ा सूरत के उत्साही लोग आपके स्वागत से वहिर्मुख न हुए और न राष्ट्रीय काम में कभी किसी से पीछे हटेंगे। अस्तु आप सब लोगों की राय से आज कांग्रेस के सभासद हमारे सुयोग्य मित्र रास बिहारी घोष होते हैं ( सब ओर से नो नो )

अम्बालाल—सुनो सुनो कान लगा कर एकाग्र चित्त हो सुनो। मैं अनुमोदन करता हूं। आज सभा के सभापति रासबिहारी घोष-मेरा है-प्रस्ताव यह घोष बड़े निर्दोष— ( नो नो सब ओर से )

सु—दीवान बहादुर की बात मैं अनुमोदन करता हूं मैं साठ वर्ष का हूं मेरी सुफैद डाढ़ी का लिहाज़ आप लोगों को करना ही चाहिये— ( सब ओर से नो नो बैठो २ मैं इस अनुमोदन का अवरोधन करता हूं )

सु—( ज़ोर से चिल्ला कर ) मैं सभापति की आज्ञा का सहर्ष प्रतिपालन करता हूं।

( नहीं सुनैंगे—मत बोलो मैं उस आज्ञा का निवारण करता हूं )

सभापति—( धमकी और घुड़की से विरला के ) सुनो २ सेत में सेशन ख़राब करते हो—व्यर्थ कांग्रेस बदनाम करते हो-नहीं मानोगे तो ख़राब होगे—( सब ओर से ) चुप रहो मत बोलो नहीं मानैंगे ( सब ओर गुलशोर के साथ पटाक्षेप )

## मुरारि और भवभूति

मुरारिपदचिन्ताचेत् भवभूतिं परित्यज ।
मुरारिपदचिन्ताचेत् भवभूतिंपरित्यज ॥

( मुरारि ) भगवान् के पद की चिन्ता रखना चाहते हो तो ( भव-भूति ) संसार की संपत्ति छोड़ो-मुरारि की कविता का रस लिया चाहो तो उनके पदों के आगे भवभूति कवि को छोड़ो-

मुरारिपदचिन्तायां भवभूतेस्तु का कथा ।
भवभूतिं परित्यज्य मुरारिमुररीकुरु ॥

मुरारि के पद की चिन्ता में संसार की संपत्ति की क्या गिनती है संसार की संपत्ति त्याग मुरारि को अंगीकार करो।

मुरारिपदचिन्ताचेत् तदामा घेरतिंकुरु ।
मुरारिपदचिन्ताचेत् तदामाऽघेरतिंकुरु ॥

मुरारि के पद की चिन्ता हो तो माघ पढ़ने में रुचि करो-मुरारि के चरण की चिन्ता चाहो तो ( अघ ) पाप से बचो-

आधुनिक कवि मुरारि की क्लिष्ट कल्पना अनर्घ राघव से विदित है जिस पर भवभूति के मुक़ाबिले किसी ने इन पद्यों को लिख भवभूति से मुरारि को बढ़ाय माघ कवि को मुरारि के बराबरी का ठहराया है—पद्य तीनों बड़ी चातुरी के हैं और श्लेषपूर्ण हैं।

---

## रिलीफ़ वर्क्स खोलने का उद्देश्य ॥

किसी काम को करने का मन में संकल्प करतेही सहज में यह प्रश्न उत्पन्न होता है कि यह काम क्यों किया जाय? इस प्रकार के प्रश्न सम्बन्धी विचार करने में अंगरेज़ तत्व वेत्ताओं में दो पक्ष हैं। एक पक्ष का कथन है कि बहुत सी बातें मनुष्य को स्वभावतः करनी पड़ती हैं और

मनुष्य की विवेक शक्ति ही उसे उस काम करने की ओर आकर्षित करती है दूसरे पक्ष वालों का कथन है कि जिस काम को करने से लाभ होता है उस काम को करने में मनुष्य का चित्त अवश्य लगता है सच बोलना मन का स्वाभाविक धर्म है। सच बोलना ही अपना कर्तव्य कर्म है मन में इस बात की स्वाभाविक स्फूर्ति होती है अतएव मनुष्य अवश्य सच बोलता है। यह पहिले पक्ष वालों का कथन है। दूसरे पक्ष वाले कहते हैं कि झूठ बोलने की अपेक्षा सच बोलने में अधिक लाभ है। यह बात अनुभव से सिद्ध हो चुकी है इसी कारण मनुष्य अपने लाभ के लिए सच बोलने में प्रवृत्त होता है।

ये दोनो पक्ष अपने यहां भी पाए जाते हैं। मीमांसा और धर्मशास्त्र इत्यादि ग्रंथों में पाया जाता है कि अमुक कर्म का अदृश्य फल है। तात्पर्य यह है कि अमुक कर्म का फल अदृश्य है परन्तु तौभी उसे शास्त्रों की आज्ञा अनुसार करना ही चाहिए परन्तु हम लोगों में दृष्ट फल वादी या लोकायतों के मत का प्रचार कभी अधिक नहीं हुआ। कर्म से प्राप्त होने वाले फल की इच्छा मन में न लाना अपना कर्तव्य कर्म है अतएव उसे करना ही चाहिए इस भाव के अनेक वाक्य "अनाश्रितः कर्म फलम्" इत्यादि वाक्य भगवद्गीता आदि अनेक पवित्र ग्रंथों में पाए जाते हैं और इन वाक्यों का प्रभाव हिन्दू लोगों के मन पर बहुत ही प्रबल है। यह बात उनके धार्मिक और लौकिक आचरणों से भी स्पष्ट है। परन्तु पाश्चिमात्य देश में दृष्ट-फल वादी लोग ही अधिक पाए जाते हैं और इसी मत के अनुरोध से वे कर्म करते हैं। रिलीफ़ का काम खोलने का मुख्य मतलब क्या है इस प्रश्न की विवेचना करते समय उपरोक्त विचारों को ध्यान में अवश्य रखना चाहिए। अन्न के बिना लोग भूखों मरने लगे अतएव उनको अन्न देकर उनके प्राणों की रक्षा करना इस प्रकार की इच्छा मनुष्य के मन में स्वभावतः उत्पन्न होती है। इसी अभिप्राय से लोग ग़रीबों को अन्न दान करते हैं। परन्तु ग़रीबों को अन्न दान देने के कारण मैं बड़ा धर्मात्मा हूं इस बात की लोगों में चर्चा फैले। लोग मेरी स्तुति करें और

यदि ईश्वर है तो उसके यहां मुझे स्वर्ग अथवा सुख प्राप्त हो; इत्यादि अन्न दान से होने वाले अनेक लाभ बहुतों को दिखाई पड़ते हैं और इसी मतलब से वे ग़रीबों को अन्न दान करते हैं। सरकार आजकल जो रिलीफ़ का काम खोल रही है अथवा उसने खोले हैं उसके खोलने का मुख्य उद्देश्य क्या है इस विषय का प्रश्न मन में सहज ही उत्पन्न होता है। क्या स्वाभाविक दया के कारण ही सरकार ग़रीबों पर दया करती है अथवा किसी गूढ़ अभिप्राय से? पूर्व काल में हमारे राजा महाराजा स्वतंत्र एकव्यक्ति हुआ करते थे इस कारण उनके मन में दया का भाव अथवा स्वाभाविक स्फूर्ति का होना सम्भव था परन्तु आजकल की हमारी सरकार एक बड़े लाट और दो चार उनकी सभा के सभासद मिल कर बनी है। इस प्रकार अनेक व्यक्ति मिलकर बनी हुई सरकार का एक मत होना कठिन है। दस पांच आदमी मिलकर जो सरकार बनी है उसके मन में स्वाभाविक स्फूर्ति होना कठिन काम है। इससे यह प्रगट होता है कि सरकार जो रिलीफ़ वर्क्स खोलती है उसमें उसकी स्वाभाविक स्फुर्ति नहीं है। हम देखते हैं कि अकाल सम्बन्धी जो क़ानून बनाया गया है उसमें एक नियम यह भी है कि रिलीफ़ वर्क्स खोले जावें। इसी नियम के अनुसार रिलीफ़ वर्क्स खोला गया है दया के कारण नहीं। अकाल के लिए जो क़ानून बनाया गया है वह स्वाभाविक दया के कारण बनाया गया है यह कहते नहीं बनता। अमुक काम करने से लाभ है अमुक काम करने से हानि है यही बात सोच कर लाट सभा के सभासद किसी क़ानून का मसविदा तय्यार करते हैं और सरकारी लाभ हानि का अनुमान लगाकर ही वह स्वीकार अथवा अस्वीकार होता है। तब ऐसे क़ानून में लिखे हुए रिलीफ़ काम खोलने का मतलब स्वार्थ के अतिरिक्त और क्या हो सकता है। अकाल क़ानून के अनुसार "दातव्यमिति यद्दानं दीयतेऽनुपकारिणे। देशे काले च पात्रे च तद्दानं सात्विकं स्मृतम्"। इस वाक्य के अनुसार रिलीफ़ कामों के ऊपर अन्न दान नहीं होता यह बात विश्वास के साथ कह सकते हैं। मन में किसी प्रकार की इच्छा न रख सरकार रिलीफ़ के काम में ख़र्च करती है यह बात कोई विचारवान् पुरुष स्वीकार नहीं कर सकता।

यदि सरकार को रिलीफ़ का काम खोलने से किसी विशेष फल पाने की इच्छा है तो वह काम कौन सा है? जिस सरकार ने बद्रिकाश्रम से लेकर रामेश्वर तक और द्वारिका से लेकर जगन्नाथ तक सारा भारतवर्ष अपने हस्तगत कर रक्खा है। देश भर में वृटिश साम्राज्य रूपी सूर्य की किरणें फैल भारतवासियों की आखों में चका चौंध उत्पन्न कर दी है उस सरकार को अब किस विशेष फल पाने की आकांक्षा है? जब तक राज्य प्राप्त नहीं होता तब तक तो राजा को उस राज्य पाने की चिन्ता रहती है परन्तु राज्य पाने पर उस राज्य को अपने अधिकार में बनाए रखने की चिन्ता सदा बनी रहती है। नवीन राज्य को अपने स्वाधीन करने में राजा लोग न्याय अन्याय नहीं देखते। परन्तु राज्य को अपने अधिकार में कर लेने पर न्याय अन्याय का निरीक्षण करने के निमित्त अदालतें खोली जाती हैं बड़े बड़े जज्ज और न्यायाधीश नियत किए जाते हैं और इसी न्याय शासन के कारण से ही रिलीफ़ का काम खोलने की भी आवश्यकता पड़ी है।

राज्य की रक्षा जिस प्रकार बाहरी शत्रुओं से करनी पड़ती है उसी प्रकार भीतरी शत्रुओं से भी। भूख महा प्रबल और भयंकर शत्रु है। हर एक मनुष्य को भूख लगती है। पेट भरने के साधन न रहने पर इस राक्षसी भूख द्वारा देश में नाना प्रकार के अनर्थ उत्पन्न होते हैं। अकाल के समय इस राक्षसी भूख के दांत कितने पैने होते हैं इसका अनुभव सहज ही में हो जाता है। यदि एक एक मनुष्य के भूख का हिसाब लगाया जाय तो वह इतनी भयंकर नहीं दिखाई देती परन्तु जब सैकड़ों, हज़ारों, लाखों वुभुक्षित लोगों की भूख एकत्रित देखी जाती है तब उस का उग्र, असह्य और भयंकर स्वरूप प्रत्यक्ष दैत्य अथवा दानव के समान दिखाई पड़ने लगता है। हज़ारों लाखों मनुष्य जिनकी आखें बैठ गई हैं। जिनके शरीर में मांस और रक्त नाम मात्र बच रहा है। जिनकी एक एक हड्डी दूर से दिखाई पड़ती है। गालों के बैठ जाने से जिनके दांत बाहर निकल आए हैं। हाथों और पैरों के नख बढ़े हुए हैं। कमर झुक

गई है, हाथ पैर सूख सूखी लकड़ी के समान हो गए हैं, जिनके पास अपना तन ढाकने के लिए एक हाथ भर कपड़ा तक नहीं है, न पानी पीने के लिए कोई बरतन। ऐसी विकराल मूर्ति को देखते ही राजा लोग थर थर कांपने लगते हैं। उनको भय उत्पन्न हो जाता है कि येही लोग यथार्थ में राक्षस हैं। जब किसी धनाढ्य पुरुष को वे लोग जाकर घेर लेते हैं तब उस के प्राण सूख जाते हैं और उसे अपनी मृत्यु सन्मुख दिखाई पड़ती है। कौन मूर्ख होगा जो ऐसे भयंकर राक्षसों से अपना पीछा छुड़ाना न चाहता होगा। मुट्ठी भर चना देकर यदि स्वर्ण जटित सिंहासन की रक्षा होती हो तो उसे कौन अबिवेकी अपने हाथ से जाने देगा? जहां एक बूंद अमृत देकर शत्रु मारा जा सके वहां विष देने से क्या लाभ? यही सब ख़याल हमारी विचार शील सरकार के हुए होंगे।

यदि यह विचार न होता तो क्या देश में इस प्रकार भयंकर अकाल पड़ सकते हैं और लाखों प्राणी स्वाहा हो सकते हैं? यदि सरकार चाहे तो भारतवासियों को अकाल के विकराल चंगुल से बचा सकती है। परन्तु जब मुट्ठीभर चने देकर रत्न जड़ित आभूषण मिल सकते हैं तो किसी ऐसे प्रबल उपायों को सरकार क्यों काम में लाए; जिससे उसी को हानि नहीं है वरन उसके भाई बन्दों को भी सरासर हानि होने की सम्भावना है। यदि सरकार देशवासियों को अकाल से बचाने के लिए नाज का विलायत जाना बन्द कर दे तो क्या उसके भाई बन्द विलायत वासियों की भूख के कारण वही दशा न होगी जो आज कल भारतवासियों की है? क्या कोई बल रहते हुए भी अपने स्वजाति बान्धवों को क्षुधा से पीड़ित होने के कारण उनका भयंकर विकराल रूप देख सकता है? हां, केवल भारतवासी ही ऐसे हैं जो अपने भाइयों को मौत के मुख में देख कर अपना मुंह फेर लेते हैं और मन में प्रसन्न होते हैं कि अच्छा हुआ हमारा एक भाई नष्ट होगया! अब हम अकेले ही सारा सुख और आनन्द लूटेंगे। परन्तु अन्य देशवासी जिन में विवेक है वे इस बात को कभी सहन नहीं कर सकते। वे अपने भाई

को मौत के पंजे में फसते हुए देखकर इस कारण दुःखित होते हैं कि हमारा साथी जाता रहा। हमारे एक आदमी के नष्ट हो जाने से हमारी शक्ति कम होगई। अपनी प्रभुता बनाए रखने के लिए हमारा एक सहायक जाता रहा। इसी लिए वे अपने एक भाई को मरते देख दुःखित होते हैं और उसके बचाने का उपाय करते हैं, भारतवासी अपने भाई को मरते देखकर प्रसन्न होते हैं और उसे नीचे ढकेल कर मरने में सहायता पहुंचाते हैं। तात्पर्य यह कि रिलीफ़ का काम खोलने से सरकार का मतलब अपने साम्राज्य को भूंखे राक्षसों से रक्षा करना ही है किसी दया अथवा उपकार की दृष्टि से सरकार इन कामों को नहीं खोलती। यदि इन भूंखों को मुट्ठी भर अन्न देकर न मारा जाय तो वे राक्षस विकराल पेट की ज्वाला से पीड़ित होकर वृटिश साम्राज्य में भयंकर उपद्रव खड़े करदें जिसके कारण सरकार को बहुत ही हानि और कष्ट उठाना पड़े। अतएव साम्राज्य को वुभुक्षितों से बचाने के लिए ही सरकार ने रिलीफ़ का काम खोलने की अपूर्व युक्ति निकाली। भूंखे लोग देश में इधर उधर घूम कर कहीं उपद्रव न खड़ा करदें इसी लिए अकाल पीड़ित हज़ारों मनुष्यों को एक स्थान पर सरकारी अधिकारियों की निगरानी में रख कर अपने साम्राज्य को सुरक्षित रखना हो सरकार का मुख्य उद्देश्य है। पर काम करने वालों को सरकार एक अथवा डेढ़ आना रोज़ देती है जब अन्न रुपये का ६, ७ सेर बिकता है तब कोई मनुष्य एक आना अथवा डेढ़ आने में अपनी गुज़र किस प्रकार कर सकता है? तब कैसे कहा जाय कि सरकार भूंख से पीड़ित जान कर ही दया अथवा उपकार की दृष्टि से रिलीफ़ का काम खोलती है?

अकाल पीड़ित लोगों में अधिक लोग कौन हैं? हमारे विचार से तो इन लोगों में किसान और खेती का काम करने वाले ही अधिक हैं। पानी न बरसने से जब खेती का काम रुक जाता है तभी देश में भयंकर अकाल पड़ता है। यदि किसानों को माल-गुज़ारी और नाना प्रकार के करों से कस न दिया जाय, उनके

कठिन परिश्रम द्वारा उपार्जित उनके पसीने की गाढ़ी कमाई को चूस न लिया जाय तो एक साल क्या कई साल तक पानी न बरसे तो वे अन्न के बिना कभी मर नहीं सकते। परन्तु बन्दोवस्त के अस्थायी होने के कारण उनके कठिन परिश्रम का फल सरकार के घर चला जाता है जो कुछ बच रहता है वह सरकार के भाई बन्द अंगरेज़ व्यापारी अपने स्वदेश बन्धुओं का पेट भरने के लिए उसे विलायत ढो ले जाते हैं। ऐसी दशा में उनके प्राणों की रक्षा होना असम्भव है। यदि सरकार वास्तव में भारतवासियों को अकाल से बचाना चाहती है; यदि वास्तव में सरकार हमें सुख पहुंचाने की कामना रखती है, यदि सरकार की हम पर सच्ची दया है; यदि सरकार हमारे ऊपर शुद्ध अन्तःकरण से उपकार करना चाहती है; तो उसे चाहिए कि संकोच को परित्याग करके देश के एक ओर से दूसरे ओर तक स्थायी बन्दोवस्त बंगाल के समान कर दे। अनाज का विलायत जाना बन्द कर दिया जावे, स्वदेशी की उन्नति में तन, मन, धन, से सहायता पहुंचावे, जिससे देश की आर्थिक दशा सुधर सके। और भारतवासियों को अज्ञानान्धकार से निकालने के लिए स्वतंत्र रूप से शिक्षा का प्रबंध करे; फिर हम देखेंगे कि देश में अकाल किसप्रकार पड़ते हैं? यदि सरकार इस प्रकार हमारी सहायता करने के लिए तय्यार नहीं है तो हमें यह भी कहने में संकोच नहीं है कि रिलीफ़ वर्क्स खोलने की नीव दया और उपकार की दृष्टि से नहीं रक्खी गई है वरन रिलीफ़ वर्क्स खोलने की बुनियाद अपने साम्राज्य की रक्षा के लिए स्वार्थ पर रक्खी गई है। प्रेम दया और उपकार की ओर झुका के अपना स्वार्थ साधान करना सभ्य जगत के सामने और परम पिता परमेश्वर के सम्मुख कभी न्याय नहीं कहलाया जा सकता। क्या इस घृणित कार्य को विचारवान् पुरुष कपट के अतिरिक्त कोई दूसरा नाम इसका रख सकते हैं? अतएव हम सरकार से फिर एक बार यह जान कर भी कि हमारी विनय अथवा हमारे रोदन पर कुछ ध्यान नहीं दिया जायगा। कर्तव्य वश यही विनय करते हैं कि सदा एकसा समय किसी का नहीं रहता इस अवसर पर हमारे दुःखों को दूर करके हमें

सच्ची रिलीफ़ पहुंचाइए। इस बनावटी रिलीफ़ से हमारी तृप्ति न अब तक हुई है न होगी।

## अकिल अजीरन रोग।

इस अकिल अजीरन रोग ने किसी को नहीं छोड़ा तमाम तिब्ब और वैद्यक छान डाला इसका इलाज कहीं न पाया। चाहे कोई कितना ही विशाल बुद्धि हो एक न एक अकिल अजीरन का पुछल्ला पीछे लगाही रहता है। सब के पहले हम अपने ही को जांचते हैं। मन में ते किये बैठे हैं कि हम अगाध बुद्धि के महा महासागर हैं, सच्चरित्र की ऐसी कसौटी तो कहीं ढूंढ़ने से भी मिलना कठिन है, इस लिये सर्वजन हितैषी होने की प्रगाढ़ इच्छा ने जो ज़ोर किया तो अकिल का अजीरन हो गया और यह बेहूदापन गांठ बांध लिया कि एडिटर बन पर उपदेश कुशल बनै। अपने हिन्दुस्तानी भाइयों का सब भद्दापन दूर कर इन्हें कुन्दन सा निखालिस और चमकीला कर दें" "प्रांशुलभ्ये फ़ले मोहादुद्बाहुरिव वामनः" चढ़ाव उतार के साथ ऊंचा नीचा समझाते उमर की उमर खेडाला पर कुछ असर न हुआ किसी एक बात में भी इन्हें सुधार करते न पाया। स्वराज की उत्कट बांछा अलबत्ता ज़ोर पकड़ती जाती है। कभी एक बार भी मन में नहीं धँसता कि हमारी इस सामाजिक गिरी दशा में स्वराज की बासना कितनी हास्यास्पद है। विद्या और बुद्धि वैभव में वाचस्पति के भी बाबा हमारे युवक जो निस्सन्देह देश की भावी भलाई के अंकुर हैं; जिनका नया जोश नई तालीम, नई रोशनी, नई उमंग सब मिल एक ऐसा नये तरह का अक़िल अजीरन उनमें पैदा कर दिया जिस्से पुराने ख़याल वालों की गन्ध भी उन्हें नहीं सोहाती। इन पुरानों को चाहता था कि दूरीना बुज़ुर्ग और बहुदर्शी थे इन नयों की क़दर करते सो उनके बजबजाते हुये सड़े दिमाग़ में जिसकी याद करते उकलाई आती है इन नयों की नई रोशनी धसती ही नहीं तब क्यों कर उनका अन्धकार दूर हो। जन्म जन्म का कोढ़ साफ़ होते २ होगा आज ही सब कैसे हट जाय। इन नये और पुरानों की अक़िल अजीरन ने हमारी हिन्दू समाज को हवा-

ढोल में छोड़ नौका समान मझधार में डुबोरही है। "हरहटों की लड़ाई में कपिला का विनाश"।

हमारी वर्तमान गवर्नमेंट अपने को इनसाफ़ पसन्द न्यायशील और उदार प्रसिद्ध किये हैं पर अक़िल अजीरन का पुछल्ला ऐसा उसके साथ लगा है कि जिससे उसके कर्मचारी गण यह कभी सोचते ही नहीं कि स्वजाति पक्षपात के मुकाबिले न्याय और उदार भाव उनके कामों से सिद्ध होता है ? वरन सदा इसी कोशिश में लगे रहते हैं कि हिन्दुस्तानी उभड़ने न पावें। सरकार के राजकीय प्रबन्ध और मुल्की इन्तिज़ाम सब सराहने योग्य हैं। हर एक महकमों के अकिल का अजीरन जुटते २ पुलिस सिसटेम बन गया जिससे सरकार के न्याय में बट्टा लगने के अलावा अंगरेज़ी राज अत्याचार और बिद्रूत करने में नवाबी का भी कान काटे हुये है। वेद के समय के हमारे पुराने आर्यऋषि बड़े बुद्धिमान् तपस्वी पवित्र चरित्र और सकल विद्या पारंगत थे पर अकिल अजीरन ने उन्हें भी न छोड़ा। अपने सन्तान ब्राह्मणों को दक्षिणा लेने का पूर्ण अधिकार दे गये और लिख गये कि "अविद्यो वा सविद्यो वा ब्राह्मणो मामकी तनू" भगवान् कहते हैं "ब्राह्मण लिखा पढ़ा हो चाहे अपढ़ हो हमारी देह है" "अग्नि में होम करने से हम इतना सन्तुष्ट नहीं होते जैसा ब्राह्मणों के भोजन और उन्हें दक्षिणा देने से। यह न सोचा पीछे यह दक्षिणा उनके लिये ज़हर हो जायगी। दक्षिणा के सहारे ये पढ़ना लिखना सब छोड़ बैठेंगे और नितान्त बेकदर हो "पीर बवर्ची भिश्ती खर" बन बैठेंगे। दक्षिणा की आशा से सबों के सामने हाथ पसारना कैसा घिनौना काम है पर हमारे ब्राह्मण भाई इसे बड़ा प्रतिष्ठित समझ रहे हैं। अच्छा किसी ने कहा है :

"नित्यंप्रसारितकरः करोति सूर्योपिसन्तापम्"
"नित्यं प्रसारितकरो दक्षिणशाप्रसादकः"
न केवलमनेनैव दिवसोपि तनूकृतः।"

करके माने किरन और हाथ के भी हैं। सूर्य ऐसे तेजस्वी भी नित्य "कर" किरन दूसरे पक्ष में हाथ पसारे रहते हैं तो वह भी सन्ताप

देते हैं। हमने अनुभव पूर्वक इसे देख लिया है कि जबतक करके नीचे कर रखने की आदत ब्राह्मणों की दूर न होगी और सदा बेहने धुने का इन्हें मिलता जायगा तब तक ये कभी न चेतेंगे। जिस दिन निद्रा विसर्जन कर परशुराम के सामने ये चेत उठेंगे उसी दिन देश का दुख दरिद्र दूर हट स्वराज सहज में मिल जायगा। कोई अवतारिक पुरुष पैदा हो कि दक्षिणा मांगना इनका छुटा देतो बड़ा उपकार हो। कहां तक कहें इस अकिल अजीरन ने ईश्वर तक को नहीं छोड़ा। सृष्टि रचना करते समय उसकी कारीगरी में जो कुछ भद्दापन आता गया वह सब कूड़े के समान इकट्ठा होता गया और कूड़ों का ढेर का ढेर Embodied मुजस्सिम आकृतिमान् हो इललटरेट सेठ के आकार में परिणत हो गया। दूसरे यह कि अकिल का अजीरिन नहीं तो इसे कौन शऊदारी कहैगा कि उड़ैसा में तो इतना पानी बरसै कि देश का देश बह जाय देश के और हिस्सों में कहीं कसम खाने को भी श्रावण के उपरान्त बूंद धरती पर न आवे। सबेरे ही से वारहो सूर्य इकट्ठे हो जो आंख फाड़ एक टक चितौने लगे तो दो महीने तक पलक न भांजा खेती सब एक दम ठांव ही पटपटाय रह गई। पशु सब तृण के अभाव से संयमिनी पुरी के पाहुने होने लगे। गल्ले के रोज़गारियों की बन पड़ी रेलोब्रादर्स के ढो लेजाने से जो बच गया उसे मोतियों के भाव बेचते हुए रुपये से अपना घर भर लिया। मारे खुशी के पेट उनका नगाड़ा सा फूल उठा। "क्वचित् दोषो गुणायते" दैव का यह अकिल अजीरन उनके लिए पारस हो गया "किसी को बैगन बावले किसी को बैगन पथ्य।,, वाली कहावत ठीक उतरी। अन्त को यही कहने का मन होता है कि सब रोगों में अकिल अजीरन लाइलाज मर्ज़ है और कोई नहीं बचा जो ईश्वर की विचित्र रचना में इस बीमारी में मुवतिला न हो।

## स्वराज्य क्या है।

गुलामी से छुटकारा पाय स्वच्छन्द हो जाना ही स्वराज है। स्वराज्य हमारे लिए कोई नई बात नहीं है भारत में सदा से स्वराज्य रहा है। जिस तरह हमारा सनातन धर्म सदा से चला आ

रहा है और चला जायगा। यह स्वराज वेदान्तियों की मुक्ति के समान है मुक्ति पाने के साधन में विघ्न जैसा अविद्या या माया है वैसाही स्वराज्य में भी अनेक विघ्न हैं और होते रहैं गे। यह कोई ऐसी वस्तु नहीं है जो मांगने से मिल जाय जिसका इसपर पूर्ण अधिकार या पूरा कब्ज़ा है वह क्यों देने लगा। संसार का क्रम है जिसने एक वस्तु पर अपना दखल जमा लिया और वह वस्तु सर्वथा प्राप्त हो गई तो कल आप दूसरी वस्तु के लिये हाथ पसारेंगे। और उसको भी गटक कर तीसरी पर दांत लगावेंगे तब वह बेचारा जो सर्वस्व का मालिक बना बैठा था थोड़े दिनों में निकाल बाहर कर दिया जायगा। अच्छा तब बिना मांगे मिलने का उपाय क्या है। उपाय यही है कि उन अनेक विघ्नों का कुछ ख्याल नकर जो विपत्ति आवे उसे झेलता जाय; सब तरह का कष्ट सहता रहे; और अपने लक्ष्य की ओर ध्यान जमाये काम करता जाय। अपने में शक्ति पैदा करना, एक दिल होना, अपने सहारे चलना, इत्यादि इसके प्राप्त करने के उपाय हैं। तैरने वाला जैसा एक दम पानी पर अपने को छोड़ देता है तब तैरता है वैसा ही हम लोग भी अपने बाहुबल का सहारा ले ईश्वर पर दृढ़ विश्वास रख जब कोई काम करेंगे वो निश्चय कृतकार्य होंगे। परमात्मा की कुछ ऐसी ही प्रेरणा भी मालूम होती है नहीं तो डेढ़ साल के बीच एकाएक लोगों में जागृति पैदा हो जाना और लोगों के कान खड़े हो जाना मानुषी कृत्य नहीं है। सत्य की सदा विजय होती है जहां सत्य है वहां ईश्वर है। यदि अपने लक्ष्य के प्राप्त होने में विलम्ब हो तो वह हमारा दोष है ईश्वर का नहीं।

जातीय शिक्षा का प्रचार अपने निजका काम है। गवर्मेंट इस विषय में और कुछ सहायता नहीं दे सकती जो शिक्षा हमें सर्कार की ओर से मिली है बहुत है। इतनी ही तालीम हम लोगों की गवर्मेंट को अखर रही है और खटक पैदा हो गई धीरे २ तालीम कम करने की फ़िकिर हो रही है। तब जातीयशिक्षा में सर्कार से सहायता पाने की

कौन आशा की जा सक्ती है। दूसरा काम अपनेयहां की कारीगरी का बढ़ाना और तन मन, धन से उस के लिये यत्न करना है। कोई कौम सदा गुलामी में नहीं रही इतिहास हमे यही सिखाता है। अपनी भीतर की ज्योति को बाहरी ज्योति से मिलाने का यत्न और धीरज धरे आगे कदम बढ़ाते जाना ही हमारा कर्तव्य कर्म है। इस तरह पर चले जाने से एक शताब्दी नहीं ५० वर्ष भी नहीं वरन २० वर्ष की अवधि बहुतही ज़रूरी मालूम होता है। स्वराज के लिये जातीय शिक्षा स्वदेशी और बायकाट दोनों की ज़रूरत है। कुछ लोगों की राय है जहां तक हो सके बायकाट अपने चित्त में रक्खें जिन से हम सब भांति दबे हैं उनको चिढ़ाने से सिवाय हानि के लाभ कोई नहीं है। हमारे नौ जवानों में उन्नति के सब अंकुर पाये जाते हैं एक Rashness अविचार कारिता कृत कार्य होने के लिये बहुत हानिकारक है तब हम उसे क्यों न छोड़दें।

**सहसा विदधीत न क्रिया मविवेकः परमापदांपदम्**
**वृणुतेहि विमृष्यकारिणं गुणलुब्धाः स्वयमेवसंपदः॥**

जल्दी में आय बिना सोचे विचारे कोई काम न कर डाले अविवेक परम विपत्ति का कारण है गुण की लोभी संपति आपसे आप आकर उसे बर लेती है जो विचार पूर्वक काम करने वाला है—२० बर्ष में येही नवयुवक परिपक्व बुद्धि वाले हो देशोद्धार के द्वार होंगे—एक Generation नसल को सब तरह का खतरा उठाना पड़ेगा उसके उपरान्त जो नसल होगी वह स्वराज का सुख भोगेगी। धनवान् सेठ सहूकारों में देखा जाता है कि उनके वंश का एक कोई प्रधान पुरुष या मूरिस आला लाखों रुपया कमाय छोड़ जाता है लड़के और पोते उस धन का सुख भोगते हैं। वही बात हर एक कौम तरक्की के साथ भी लगी है हमारे सामयिक शासनकर्ता के पूर्व पुरुष एक बार अपना जीवन खतरे में छोड़ विजयी हो अब अपने वंशधरों को सर्वस्व सुख के भोक्ता कर गये। अच्छा कहा है। "**न साहस मनारूह्य नरो भद्राणि पश्यति साहसं पुनरारूह्य यदि जीवति पश्यति**" अपने को खतरे

में बिना डाले मनुष्य कल्याण की बात नहीं अनुभव करता। खतरे में डाल जीता बचै तो सकल सुख का अधिकारी अपने को पावेगा। हम अपने किसी दूसरे भाई के मुक़ाबिले ज़रा भी अपनी हानि नहीं सहा चाहते तब जान को खतरे में डालना तो सपने के ख्याल हैं। इसी तरह की जागृति क़ायम रही और लंगड़े लूले न कर दिये गये तो कुछ दिन में स्वराज के क़ायम होने का प्रागरूप क़ौमियत आ जाना संभव है। क़ौमीयत का आना स्वराज की पहली सीढ़ी है। इस सीढ़ी पर धीरे २ चढ़ने का समय अब आ रहा है जब जो कुछ करना हो जल्द करैं।

# प्यासा पथिक।

## एक प्रबन्ध कल्पना।

हे जगदाधार सब ओर से निराधार इस प्यासे पथिक की प्यास अब केवल तू ही बुझावे तो बुझावे। बड़े २ जलाधार सरित समुद्र से भी जो न हो सका वह अल्पतोय तुच्छ कासार से कब संभव है! जिसके कर्दममय पंकिल पानी में अगाध जल संचारी रोहू फर फराती हुई क्षुद्र सफ़रीसी बार २ करवटें लेती हुई चाण्डाल निर्दयी ग्रीष्म के दिन गिन रही है और सकल भुवन को जीवन दान देने में दक्ष नीरद की बाट जोह रही है। तपन की खरतर किरणों से सन्तापित भूमण्डल को तप्त लोह पिण्ड के आकार का कर देने वाले जेठ मास के नाम का सियापा मानों उसके जीते ही गा रही है। हा धिक् मैं अपनी जघन्यता को कहां तक पछताऊं दीन दुखिया प्यासे बटोही दूर देश से आये और निराश लौट गये। "धिग् जन्म अर्थि विमुखस्य" कहता हुआ यह कासार मानों आंसू बहा रहा है वही आंसू इस सूखे ताल में कांदों बन गया। नये जलद के जल में लौ लगाये मेढक कासार के उसी कांदो के नीचे पैठता जा रहा है। उजड़े घरकी संपत्ति समान शतपत्र कमल अपने सैकड़ों पत्तों से ताल को सब ओर से ढांपे हुये मानों इस चेष्टा में लगा हुआ है कि यद्यपि यह ताल अपना भरम गवांय बैठा है फिर भी इसकी पोल क्यों खुलने पावे। मानों इस बात को प्रगट कर रहा है कि भले लोग अपनी भलाई से कभी नहीं चूकते। अथवा सुगन्धि

सौन्दर्य कोमलता आदि गुण अपने में देख कमल पंकज कहा जाता है इस अपनी नीची पैदाइश के छिपाने को शत पत्र हो गया है। जिसमें सैकड़ों पत्तों से वह अपनी नीची पैदाइश के कलंक छिपाने में भरपूर कृतकार्य हो सके। अस्तु बटोही पानी के लिए लौ लगाये यहां से निराश हो आगे बढ़ा। हमारे पढ़ने वाले इस कासार को स्मरण रक्खें वह आगे चल पथिक के बड़े काम का होगा।

यह प्यासा पथिक पानी की खोज में वहां से आगे बढ़ा तो दूर से एक पर्वत स्थली देख पड़ी पहाड़ों की तरहटी में कोसों तक ऐसी धरती इसे मिली जो सब ओर हरियाली से ढपी हुई थी। हरी २ घास सूर्य की किरणों में ऐसा चमक रही थी मानो हरे मखमल का बिछौना बिछा हो या कोसों तक धरती में पन्ना जड़ दिया गया हो। इस पर्वत की उपत्यका या प्रान्त भूमि की मन भावनी शोभा ने देख मेरी प्यास न जानिये कहां बिलाय गई। इसकी प्राकृतिक शोभा मेरे मन को ऐसा आकर्षित कर लिया कि मुझे कुछ खयाल न रहा कि मैं कौन हूं कहां जा रहा हूं और क्या मेरा उद्देश्य है। कुछ दूर आगे बढ़ा तो एक दूसरा चित्र सामने आया। छोटे बड़े वृक्ष पर्वत की प्रान्त भूमि को ऐसा आच्छादित किये थे कि मानों उस पहाड़ पर चढ़ने और उतरने के लिये सीढ़ियां बन रहे हों जिन पर भांत २ के पक्षी अपने मधुर कलरव से कान को सुख दे रहे थे। पेड़ों की डालियों पर ठौर २ मयूर नाचते हुये के का बाणी से अपनी प्रणयिनी प्रिया मयूरी को प्रसन्न कर रहे थे। पेड़ों की हरियाली से मुझे विश्वास था कि वहां अवश्य कोई जलाशय है, वहां पहुंचते ही मेरी सब प्यास बुझ जायगी अमृत समान जल पान कर अघाय उठूंगा सदा के लिये आसूदगी मिलैगी। तृष्णा के मारे अब मुझे दर दर न घुमाना पड़ैगा। इसी खयाल से सर्वथा असमर्थ भी गिरता पड़ता लड़खड़ाता वहां पहुंचा। किन्तु वहां पहुंच इसे मालूम हुआ कि ये वृक्ष और यहां की पर्वत स्थली दूर की ढोल की भांत सोहावनी थीं। नाम को भी कहीं जल का एक विन्दु नहीं है। यहां की लहलहाती हरियाली देखने ही मात्र के लिये है वास्तविक गुण का वहां अभाव है। इस प्यासे पथिक को अभी चिरकाल तक प्यास का दुःख सहना बदा है। शेष-

# चला जाय चरखा।

चला जाय चरखा पिन्न पिन्न-स्वदेशी स्वराज्य बायकाट जातीय शिक्षा पिन्न पिन्न। अब तो इस क्षुद्र चरखे का क्या ज़िकिर भांत२ के बड़े२ लूम बुनने और कातने की अनेकों कल चल पड़ी हैं पर हमारा यह क्षुद्र चरखा न बन्द हुआ चलता ही रहा। चला जाय चरखा पिन्न २।

यह चरखा कुछ आज का चला हो सो नहीं महा भाष्यकार पतंजलि और महर्षि पाणिनि तक को इसकी ख़बर थी गोत्रस्खलन की भांत लिख गये। "छिन्न पिन्न पिन्न छिन्न" पिन्न २ चला जाय चरखा पिन्न २।

जिसके मन में जो बात बसी रहती है दिन रात जिस पर ख्याल जमा रहता है साधारण बात चीत में वह बात अचानक उसके मुंह से निकल जाती है वही गोत्रस्खलन कहा जाता है। महाभाष्य के लेख से प्रगट होता है कि महर्षि पतंजलि को यह पिन्न २ गोत्रस्खलन हो गया। चलाजाय चरखा पिन्न २।

अस्तु बहुत दिनों से इसका चलना ढीला पड़ गया था यद्यपि क्लब कमेटी डिबेट वग़ह मुबाहिसों में चरखे की क़दर समझने वालों ने इस की चरचा नहीं छोड़ा सन्निपात ज्वर की तेज़ी की तरह अल्प काल के लिये चरखा चलाने का जोश चढ़ खुद बखुद उतर जाता था। किन्तु ईश्वरीय प्रेरणा ने कुछ ऐसा रंग जमाया कि लार्ड कर्ज़न महोदय को बंगाल के दो टुकड़ा करना सूझा-बंगाल के दो टुकड़े होते ही इस चरखे की Solid foundation स्थिर बुनियाद पड़ी। चला जाय चरखा पिन्न २ – लाजपतराय और अजीत सिंह इसी मतलब से मंडाले पकड़ कर भेज दिये गये जिसमें यह चरखा बन्द हो। पर यह काहे को कभी बन्द होने वाला था चला सो चला। चला जाय चरखा पिन्न २। रेज़ली-सरकुलर निकला २० आदमियों की कमेटी का क़ानून पास किया गया पर चरखे में कोई असर न पहुंचा। चला जाय चरखा पिन्न २।

पाल महाशय ६ मास के लिये जेल भेज दिये गये सन्ध्या और युगान्तर के सम्पादकों की दुर्गति की गई। तूतीकोरन में बलवा किया

गया प्यूनिटिक पुलिस वहां क़ायम हुई। एक २ अंगुल ज़मीन पर मुख़बिर मौजूद हैं यहां कोई वाकया होते देर न हुई कि वहां चाण्डाल डिटेकटिवों ने कर्मचारियों के कान भरे। यह सब इसी ख्याल से हुआ कि अब भी चरखा रुक जाय किन्तु सब व्यर्थ गया चरखा बराबर चलाही किया। चला जाय चरखा पिन्न २। स्वदेशी स्वराज्य वायकाट और जातीय शिक्षा। पिन्न २। बाम्बश्यल दागने वालों की जमात में शरीक होने के अपराध में अरबिन्दो बाबू गिरफ़्तार हुये हैं किन्तु एक क्या सौ अरबिन्द पकड़े जांय और जेल में भेजे जांय यह चरखा कभी बन्द होने वाला नहीं मालूम होता चला सो चला। आरंभ में बंगाली बाबुओं ही ने सर्कार के क़दम यहां जमाये वेही अब उखाड़ने में लगे हैं—चला जाय चरखा पिन्न २।

---

## हिन्दुस्तान को फाइदा पहुंचाने का उपाय।

झूठी राजभक्ति प्रगट करने वाले देश के शत्रु महा मण्डल के कई एक नेता कलकत्ते की काल कोठरी में क़ैद कर दिये जांय। एँगलों इण्डियन पत्र, पायोनियर, इंगलिशमैन, टाइम्स इत्यादि के सम्पादक तथा सहायकों की जीभ सी दी जाय जिसमें हम हिन्दुस्तानियों के निस्बत जो बहुधा बदख़ाही का कलमा उनकी ज़बान से निकलता है सो न निकला करे। हिन्दू धर्म के नेता और राह दिखलाने वाले पाधा पुरोहित पण्डे पुजारी तथा गुरू पकड़ २ अंगरेज़ी पढ़ा दिये जांय जिस में उनके नेत्र खुलें और प्रजा को जो गुमराही में झोंके देते हैं सुशिक्षित हो इस जघन्य कर्म से बचैं। पढ़ लिख वे ही शिष्य अथवा यजमानों में जागृति पैदा करने वाले हों। बाल्य विवाह के उत्साही पुराने लोगों की आंख फोड़ दी जाय जिस में दूध मुहों के गले में चक्की बांध जो उनका जन्म नष्ट कर पोने की आंख का सुख मानते हैं उस सुख से वे सदा के लिये वंचित रहैं न रहैगा बांस न बजैगी बांसुरी।

# मुहाविरे ।

पहिले अंकों में हम मुहाविरों का संग्रह कर चुके हैं आज उसी में कुछ और जोड़ उन्हें पुनः उद्धृत करते हैं ।

नाम—रामनाम—नेक नाम—बदनाम—नामवर ।

धाम—परंधाम—बैकुण्ठ धाम ।

काम—अपना काम—बे काम का काम—देश की भलाई का काम बुरा काम ईश्वर न करे कोई इस बला में मुब्तिला हो दीन और दुनियां दोनों से दूर गुज़र होगा ।

दाम गांठ का दाम—दाम करे सब काम ।

बल बाहुबल—बुद्धिबल—यावद्बुद्धिबलोदय—बलाबल ।

जल—वर्षा का जल—गंगाजल—अमृतजल—मल—खटमल—मोटेमल ।

फल—उद्योग फल—कर्म फल ।

कौड़ी—गाड़े पसीने की—मशक्कत की—कौड़ी के तीन तीन ।

घोड़ी—हिमायतकी—पगड़ी—फज़ीलत की । रोटी—दांत काटी ।

बेटी—ब्याही बरी—जिसकी बेटी उसकी रोटी ।

नक़ल—परवाने की—चाल ढाल सजधज की ।

साथ—चोली दामन का—खान पान का—मौत ज़िन्दगी का ।

सौदा—पट जाने का । मेल—मिलने का ।

शरीक—धुयें का—परोस दर्द शरीकीका ।

दोस्ती रिफाकत की—महाजनी—शाख की ।

छिनना नीयत का—काटना—काल का ।

ओटना—चर्खेका—लोटना—पांव तले का ।

तवंगरी—जी की—बुजुरगी—अक्लि की ।

चलना—नामका—पेटका—मुहका—हाथका चालका—रोजगारका ।

चलन—हुंडीकी—पैसेकी—बाज़ारकी ।

चाल—चिऊंटीकी—जनमासे की—हंस की—मस्तगयन्द की ।

लगना—लगन का—आंख का—मन का ।

जमना—तबियत का । मोड़ना—मुंह का ।

चढ़ना—निगाह पर का। मारना—भांजी का—हाथ का।

आब—मोती की। खाना—गम का। छुटना—हाथ का—साथ का।

लेना—नाम भगवान का—देना—उधार का—टूटना—रिश्ते का। दृग उरझत टूटत कुटुम्ब जुरत चतुरसों प्रीति—पड़त गांठ दुरजन हिये दई नई यह रीति।

स्याही—दिल की—कालिमा कलंक की—अपयश की।

पलटना—किस्मत का—फूटना—भाग का—पीटना—ताली का सिर का—छाती का।

फिरना—कालचक्र का—दिन का—किर्रना—दांत का।

वृत्ति—आकाशी—अजगरी—सिलोञ्छ—का पोली।

है इत लाल कपोतव्रत कठिन नेह की चाल—मुख सो आह न भाखिहौं निज सुख करौ हलाल।

चरखा—रांडो का—हाकिमी गरम की—बनियई—नरम की—आढ़त धरम की—खेती करम की—रोशनी—नई तालीम की—टिर्र कंगालों की। फूट हिन्दुवों की—प्रताप—अङ्गरेज़ों का—धूम स्वराज की—दल—नरम और गरमों का।

जानना वही—जिसके जानने से ईश्वर जाना जाय—जोश वही जो मुल्की हो—जाना वही कि फिर न आना हो—दान वही जो साथ सन्मान के हो—प्रीति वही जो साथ प्रतीत के हो—नीति वही जिसमे अनीत की गन्ध भी न हो—जीत वही जिस से मन जीता जाय।

---

## संपादकीय टिप्पणी

बम् का गोलादागने के उपद्रव से निश्चय हो गया कि हिन्दुस्तान में अनारकिस्ट अराजकता फैलाने वाले पैदा होगये और उनका समूह प्रति दिन बढ़ता हुआ मालूम होता है। पायोनियर से यह भी विदित होता है कि यह गरोह १७ वर्ष से कायम है। हमें ऐसे गरोह के कायम होने का रंज है। भारत सदा से राजभक्त रहा यह केवल पश्चिमी शिक्षा का फल है। अब विचार यह किया जाता है कि यहां यह राज-विद्रोही दल

क्यों कायम हुआ विशेष कर ऐसे देश में जहां के लोग बड़े राज भक्त, धार्मिक और भीरु और शांत प्रकृति के होते आये हैं। निश्चय यह इसी का परिणाम है कि जिन के हाथ में शासन की बागडोर है उन का अन्याय इतना असह्य है कि लोग अपनी जान पर खेल ऐसे काम पर उद्यत हो गये। हमारे गोरे अधिकारी अब भी चेतते और कड़ाई से मुह मोड़ते तो अच्छा था। पर वे ऐसा न करेंगे और प्रजा में ऐसे २ उपद्रवियों का दल बढ़ना अच्छा नहीं। जब लोग अपनी जान पर खेलने को मुस्तैद हैं तो कौन उम्मेद की जाय कि इस तरह के उपद्रव अब न होंगे। ऐंग्लो-इण्डियन पत्रों की बन पड़ी वे इस विद्रोह की अग्नि में पानी छोड़ने के बदले सर्कारी कर्मचारियों को और भी भड़कावेंगे। यह तो ते है कि ऐंग्लो इण्डियन पत्र देश के बड़े Curse बद दुआ हैं और इन की करतूत से राजा प्रजा दोनों में अनबन बढ़ता ही जायगा।

इलाहाबाद के कनवेन्शन से कानग्रेस के लिये क्या उपकार हुआ इसका विचार किया जाता है तो यही मन में आता है कि इससे कानग्रेस में कुछ न कुछ कमज़ोरी ज़रूर आई। इसका मुख्य उद्देश्य तिलक महोदय को अलग करने का था इसी से बांबे वालों ने इसपर विशेष ज़ोर दिया। दूसरी बात "रौडीइज़िम्" का रोकना था सो भी बिना तिलक को मनाये उसका रुकना असंभव था इस लिये कि तिलक और रौडीज़ का सम्बन्ध धूम और अग्नि कासा है "यत्र २ धूमस्तत्राग्निः" कांग्रेस में रौडीज़ कुछ न कुछ उपद्रव करते ही जांयगे और हुल्लड़ से कानग्रेस को सुख से न करने देंगे चाहो नरम लोग कितना ही हुल्लड़के बरका बनेका यत्न करें—

इलाहाबाद की सेवक समिति बड़ा काम कर रही है। मूठी २ जो अन्न घर २ मांग ये लोग इकट्ठा कर रहे हैं उस्से २२०. अकाल पीड़ित आदमियों को गत मास मे मदत पहुंची। यह मदत उन्हें दी गई जिन्हें सर्कार से सहायता न मिली थी। यहां एक मकान में आग लग गई थी स्वयं सेवक वहां पहुंच झट पट बुझाय चंपत हुये। अपने भाइयों पर

सहानुभूति का आदर्श ये स्वयं सेवक हैं—ये देश के भावी कल्याण सूचक हैं इन के प्रत्येक काम में इन्हें ईश्वर कृतकार्य करता रहे—

मिस्टर आर सी दत्त और मि॰ गोखले के विलायत जाने के समय बम्बई में एक डिनर दिया गया। उसमें दत्त ने मारली साहब के रिफ़ार्म के बारे में बहुत आशा जनक बातें कहीं उन्होंने यह भी कहा कि लिबरल दल पर हमें बहुत भरोसा है और हिंदुस्तानी मात्र को होना चाहिए। यह वही दत्त हैं जो गवर्मेंट की आयव्यय सम्बन्धी पालिसी में पहले बहुत कुछ दोष निकाल चुके हैं और लखनऊ की कांग्रेस के प्रेसीडेंट भी हो चुके हैं। डिसेन्ट्रलाइज़ेशन कमिशन में एक ओहदा पा जाने से जाल में फँस गये। इसमें मि॰ दत्त का कुसूर नहीं है कुसूर उस पद का है जो इन्हें हाल में मिला है। बल्कि मि॰ गोखले ने ऐसा नहीं किया उन्होंने ऐसी झूठी आशा नहीं दिखाई बल्कि अपनी प्रार्थनाओं को पूरा न होने का दोष अपने देशवासियों के ऊपर थोपा। उन्होंने कहा कि यह हमी लोगों की बेसबरी का फल है कि मारली साहब से जितनी आशा की जाती थी उतना नहीं किया। हम गोखले महाशय से पूछते हैं यह आन्दोलन तो तीन वर्ष का है गवर्मेंट ने हमारी किन २ प्रार्थनाओं को पूरा किया है। जब हमारी प्रार्थना नहीं सुनी जाती तो बार २ गिड़गिड़ाने से क्या लाभ। जो प्रयत्न इस गिड़गिड़ाने में किया जाता है वही प्रयत्न अपने भाइयों को सुझाने में जो बिल्कुल अंधेरे में पड़े हैं लगाया जाय तो कितना उपकार हो। मांगना बुरा नहीं है यदि हमारे मांगने का कुछ फल देख पड़े। इस समय तो प्रजा काल में भूखों मर रही है और रोटी मांग रही है। जहां जाओ वहां क्या शहर में क्या दिहात में सब जगह रोटी २ की चिल्लाहट मच रही है। क्या मारली साहब के रिफ़ार्म इस मांग को पूरा कर देंगे। यह भूख तभी बन्द होगी जब देश की पैदावार देश ही में रह जायगी और देश का धन देशवासियों ही के भलाई में लगाया जायगा। सो इन कमीशनों और डेप्युटेशनों से कभी नहीं होना है।

———

# पुस्तक प्राप्ति।

## ग्रीस की स्वाधीनता।

ठाकुर सूर्य्यकुमार वर्मा रचित हिन्दुस्तान और यूनान (ग्रीस) दोनों बड़े पुराने देश हैं। दोनों प्राचीन समय से विद्या की सिद्ध पीठ बड़े २ दार्शनिक और फिलासफरों की जन्म भूमि हैं। यह सभी जानते हैं कि सुकरात, अरस्तू, अफलातू आदि सब यूनानी थे वैसाही जैसा गौतम तथा कपिल कणाद आदि दार्शनिक सब यहां जन्मे हैं। दिग्विजयी सिकन्दर भी यहीं हुआ है। जैसा संस्कृत परिस्कृत है वैसाही वहां की पुरानी भाषा ग्रीक भी सब भांत मंजी हुई है। जैसा बाल्मीकि ने रामायण रचा है वैसा ही होमर ने इलियड नाम की पुस्तक वहां रचा है कथा दोनोंकी एक सी है और बहुत कुछ मिल जाती है। जैसा भारत में अयोध्या, हस्तिनापुर, पाटलि-पुत्र, द्वारिका, मथुरा, कन्नौज आदि प्राचीन नगर थे वैसा ही ग्रीस में स्पारटा एथेन्स करिन्थ और थीब्स प्रसिद्ध नगर थे। सारांश यह कि हिन्दुस्तान और यूनान सभ्यता की चरम सीमा तक पहुंचे हुये देश थे। इन्हीं सब बातों को पुस्तक रचयिता ने बड़ी उक्ति युक्ति के साथ दोनों देशों को मिलाया है। किन्तु दैव के कोप से जैसा हिन्दुस्तान गिर गया और सैकड़ों वर्ष से स्वाधीनता का सुख खोये बैठा है वैसेही ग्रीस भी चिरकाल तक पराधीन हो अनेक दुःख झेलता रहा। बहुत दिनों तक रोमवाले इसे सताते रहे फिर अत्याचारी टरकी के मुसल्मानों से पीड़ित हो अनेक दुःख सहा किया। १८१५ ईस्वी में ग्रीस स्वतन्त्रस्वाधीन देशों की गणना में आगया है पर भारत की आरत दशा वैसी की वैसी ही बनी है। कलकत्ता के भारत मित्र प्रेस में यह मुद्रित की गई और उपहार में बांटी गई है। ऐसे २ बीस ग्रीस भारत में समाय सकते हैं तब स्वाधीनता में भारत कैसे ग्रीस के समान हो सकता है। यह पुस्तक मराठी भाषा का अनुवाद है। पढ़ने में बड़ी मनोरंजक है।

---

# बाल भागवत

## दूसरा भाग

इस पुस्तक को इण्डियन प्रेस प्रयाग ने छाप कर प्रकाशित किया है। पुस्तक के ऊपर लेखक का नाम नहीं दिया है इसलिए नहीं कहा जा सकता कि यह पुस्तक किस की लिखी हुई है पुस्तक पढ़ने से ज्ञात होता है किसी आर्य समाजी की लिखी है। उपसंहार में लिखा है कि 'देश में जब जब पापी बढ़े, तभी तब ईश्वरीय अंश से कोई न कोई महात्मा पैदा होता रहा है। जिन अवतारों को हम साक्षात् ईश्वर मानते हैं उनको ईश्वरीय अंश कहना, मानो उनके ईश्वरत्व को कम करना है। कई स्थानों पर भगवान् कृष्णचन्द्र आनन्द कन्द के चरित्र को भ्रम-वश लेखक ने आर्यसमाजी ढंग में बदल दिया है। लेखक महाशय यदि आर्य समाजी हैं तो उनको अपना नाम प्रकाशित करने में क्यों भय लगता है। क्या धन के लोभ में पड़कर अपने विचारों को भी उन्होंने बदल डाला ? यदि यह पुस्तक किसी हिन्दू धर्मावलम्बी की होती तो अवश्य हिन्दू बालकों को और भी अधिक उपयोगी होती। अथवा महाभारतके अनुसार कृष्ण चरित्र लिखा जाता और उसमें कृष्ण महाराज की वीरता, धीरता, साहस, रण कुशलता और राजनीतिज्ञता दिखलाई जाती तो अवश्य कृष्ण का चरित बालकों के लिए अनुकरणीय हो सकता था। जिस उद्देश्य से 'बाल सखा पुस्तक माला' आरम्भ में निकाली गई थी वह उद्देश्य ऐसी पुस्तकों के प्रकाशित होने से पूरा होता दिखाई नहीं पड़ता। यदि इस पुस्तक माला में सामयिक ज्ञानोपार्जन के योग्य उत्तम उत्तम पुस्तकें प्रकाशित हों तो अवश्य बालकों को लाभ पहुंच सकता है। हमारे विचार में आज कल नवीन विचारों और पाश्चात्य विज्ञान का ज्ञान बालकों को सरल भाषा में करा देने से बहुत लाभ होगा और इसी प्रकार की पुस्तकें प्रकाशित करने से इस पुस्तक माला की उपयोगिता सिद्ध हो सकती है। पुस्तक इंडियन प्रेस में बहुत ही सुन्दर छपी है। दाम ॥) मिलने का पता—इंडियन प्रेस, प्रयाग।

# ॥ बच्चोंने तत्काल जानलिया ॥

**देखिये दो बालिकायें इस लाभकारी मीठी दवाको देखकर कैसी प्रसन्न होरही हैं**

हमारा सुधासिंधु इतना प्रसिद्ध होचला है जिससे अब यह बात निर्विवाद सिद्ध होचुकी है कि नीचे लिखी बीमारियोंके लिये विना पूछेही लोग मंगाने लगे हैं जैसे कफ, खांसी, जाडेका बुखार, हैजा, शूल, दस्त, संग्रहणी, गठिया, दमा, कै होना, जी मचलाना, बालकों के हरे पीले दस्त और कै करना इनको सिर्फ तीन खुराकमें अच्छा करता है. इसके हजारों सार्टिफिकट मौजूद हैं जिनके लिये प्रायः १२५ चित्रों सहित सूचीपत्र मंगाकर देखिये. मुफ्त भेजेंगे. सुधासिन्धु की कीमत ॥) फी शीशी ६ लेनेसे १ भेट १२ लेनेसे पांच रु०

देखिये श्रीमान् राजा इन्द्रजीत प्रताप शाह बहादुर तमकुही जिला गोरखपुर से क्या आज्ञा करते हैं।

महाशय आपका एक दरजन सुधासिंधु पहुंचा जो आपने भेजाथा यह दवा बहुत लाभ दायक है बुखार और पेटके रोगों में तो बहुतही फायदेमन्द है और बहुत रोगोंमें वैसा ही फायदा करता है और महरबानी करके आध पाव चन्दनादि तैल और वासारिष्ट भेजिये।

मंगाने का पता—

**क्षेत्रपाल शर्मा मालिक सुख संचारक कम्पनी मथुरा.**

# हिन्दी प्रदीप

शुभ सरस देश सनेह पूरित प्रगट ह्वै आनन्द भरै ।
बचि दुसह दुरजन वायु सों मणिदीप समथिर नहिं टरै ॥
सूझै विवेक विचार उन्नति कुमति सब यामे जरै ।
हिन्दी प्रदीप प्रकाशि मूरखतादि भारत तम हरै ॥

अप्रैल सन् १९०८

मासिक पत्र

जि० ३० सं० ४

सम्पादक और प्रकाशक, पं० बालकृष्ण भट्ट

## विषय सूची ।



वार्षिक मूल्य २॥) प्रति संख्या =)

अभ्युदय प्रेस, प्रयाग में मुद्रित हुआ ।

-:॥ श्री ॥:-

जिल्द ३० | अप्रैल सन् १९०८ | संख्या ४

## भगवत् शङ्कराचार्य ।*

जिन २ महा पुरूषों ने व्यासदेव के वेदान्त सूत्रों पर भाष्य किया है वे आचार्य कहलाये उन्में श्रीशंकराचार्य जी सब में मुख्य हैं और इनका शारीरक भाष्य सर्व सम्मत समझा जाता है अतएव अद्वैतमत के मुख्य प्रवर्त्तक यही महानुभाव हुये। वैदिक धर्म को छिन्न भिन्न करते जिस समय मायावादी बौद्ध जैन चार्वाक् तथा लोकायत हिन्दुस्तान में एक छोर से दूसरे तक फैल गये थे। बड़े२ राजा महाराजा शूरसामन्त सब बौद्ध या जैन हो गये थे सिवाय बौद्धधर्म और जैनधर्म के कापालिक क्षपणक वामाचार चक्राङ्कित शैव शाक्त आदि भिन्न २ मत के अनेक पाखण्ड मत फैले हुए थे। ऐसे समय दक्षिण के केरलदेश में जो अब मालावार कहलाता है पूर्णानदी के तट पर कालटि नाम का एकग्राम जो मुख्य कर ब्राह्मणों ही की बस्ती थी उस में विद्याधिराज के पुत्र शिवगुरू नाम के एक वेदवेदाङ्ग पारङ्गत अग्निहोत्री ब्राह्मण हुये उन्हीं की पाणिगृहीती

* यह लेख पढ़ने वालों को इतना रुचा कि एक कापी न बच रही और इसकी मांग आती है इससे पुनः उद्धृत करना पड़ा।

साध्वी भार्या में शंकराचार्य का जन्म हुआ। शिवपुराण के अनुसार यह साक्षात् सदाशिव के अवतार माने जाते हैं पद्मपाद हस्तामलक तोटक उदंक आनन्दगिरि ये ५ शंकर के प्रधान पट्ट शिष्य भी जिनके द्वारा अद्वैतवाद समस्त हिन्दुस्तान में फैल गया इसी समय भिन्न २ देशों में उत्पन्न हुये। इसी समय साक्षात् बृहस्पति के अवतार मीमांसकों के कुलगुरु मण्डन मिश्र दक्षिण की माहिष्मती नगरी में जन्में। मण्डन मिश्र की धर्मपत्नी न केवल नामही में बरन गुण में भी सरस्वती के समान सोण नद के तट पर रहने वाले विष्णु मित्र ब्राह्मण के घर में आ प्रगटी। शंकर दो वर्ष के थे तभी देवनागरी वर्णमाला का बोलना और लिखना दोनों अच्छी तरह सीख गए इनकी प्रतिभा कुछ ऐसी अद्भुत थी कि इसी उमर से काव्य, पुराण, इतिहास आदि की जो बातें इन से कहीं जाती या कहीं से ऐसी बातों को सुनते थे उसे तत्काल अपनी धारणाशक्ति के अन्तर्गत कर लेते थे। तीन वर्ष के थे तभी इनके पिता सुरधाम सिधार गये इन की विधवा माता ने पंचम वर्ष में इन का यज्ञोपवीत संस्कार शास्त्र विधान पूर्वक कराया। तैत्तिरीय संहिता की अध्याय की अध्याय वेद इनको पाठशाला में सुनते २ यज्ञोपवीत होने के पहिले ही कण्ठाग्र हो गये थे। यज्ञोपवीत संस्कार एक उपलक्षणमात्र था सप्तम वर्ष समाप्त होते २ निखिल वेद और वेदाङ्ग इन्हें सब आप से आप उपस्थित हो गया। सातवर्ष की उमर में समस्त विद्या में पारंगत हो गुरुकुल का वास समाप्त कर यह महायशस्वी माता की सेवा टहलमें तत्पर हुये। नित्य वेद पाठ किया करते थे अग्नि और सूर्य की विधिवत् उपासना से घर में रहते हुए भी अखण्ड ब्रह्मचर्य में कहीं से चूक न होने पाई। इस तेजस्वी बालक को बड़े २ बूढ़े लोग भी आकर प्रणाम करते थे और इसे देख अपना आसन छोड़ देते थे अपने पुत्र के ये सब अलौकिक गुण देख मा इनकी हर्ष निर्भर हो फूली नहीं समाती थी। एक दिन शंकर को साथ लै उनकी माता समुद्रगामिनी नदी में स्नान करने को गई थी रास्ते में ग्रीष्म के सूर्य की तीखी किरणों से व्याकुल हो बेहोश गिर पड़ी शंकर इसे व्याकुल देख समुद्रगा-नदी की काव्य के उत्तम पद्यों से स्तुति कर समुद्रगा नदीको प्रसन्न किया।

तब नदी की अधिष्ठात्री देवता प्रसन्न हो इन्हें बर दिया कि मैं तुम्हारी स्तुति से अतिप्रसन्न हुई अब तुम्हारी मा को इतनी दूर आने का श्रम न करना पड़ेगा । कल भोर को नदी तुम्हारे घरके पास ही बहने लगेगी । शंकर बीजन इत्यादि शीतलोपचार के द्वारा अपनी वृद्धा माता को किसी तरह चैतन्य कर घर लाये भोर को सबों ने नदी इन के घर के समीप बहते हुये देख बड़े अचंभित हुये। इत्यादि इनकी अद्भुत करामातें सुन केरल देश के राजा राजशेखर ने अपना मंत्री इनके पास भेज दर्शन की प्रार्थना किया । श्रीचरणों के दर्शन की आज्ञा पाय दस सहस्त्र सुवर्ण मुद्रा और अपने बनाये हुये तीन उत्तमोत्तम नाटक बाल रामायण विद्धशाल भंजिका नाटिका और प्राकृति भाषा का कर्पूरमंजरी नाम का सट्टक इन को भेंट कर महाकवि की पदवी पाय सफल मनोरथ हो अपनी राजधानी को लौटा। शंकर अष्टम वर्ष में पहुंच, संन्यास धारण की आज्ञा मा से मांगा और सुतवत्सला माता की इच्छा इसके प्रतिकूल पाय एक दिन प्रवाहवती नदी के जांघ तक पानी में खड़े नहा रहे थे कि एक घड़ियाल पांव पकड़ खींचने लगा। लोगों से इसका समाचार पाय मा नदी के तट पर आ विलख २ रोती हुई कहने लगी बेटा ! तुम अनाथ विधवा को छोड़ कहां चले जाते हो मैं अब किसकी हार लगूंगी। शंकर बोले मा घड़ियाल मुझे ग्रसे है यह छोड़ सकता है यदि तुम मुझे अब भी सन्यस्त हो जाने की आज्ञा दो। माने अपने पुत्र की लोकोत्तर शक्ति देख विचारा यदि यह जीता रहेगा तो संन्यासी होने पर भी इसका मुखचन्द्र देख नयनों की प्यास तो बुझाती रहूंगी सुरधाम सिधार गया तो उससे भी बंचित रहूंगी कहा तो लाचारी है जो तेरी इच्छा हो । संन्यास के लिये माता से आज्ञा पाय घड़ियाल से तुरंत पांव छुटवा मा के समीप आय बोले । अम्ब ! कहो मैं अब तुम्हारा क्या प्रिय करूं ये बन्धु लोग जो मेरे पिता का धन लेंगे सब भांत तुम्हारी रखवाली करते रहेंगे और शरीर पात होने पर शास्त्र अनुसार तुम्हारी और्ध्वदैहिक सब क्रिया कर देंगे। मा ने कहा तुम्हारा संन्यासी होना तो मैं अङ्गीकार करी चुकी किन्तु मेरा शरीर पात होने पर जहां कहीं

तुम रहो तुम्ही आकर मेरा सब क्रिया कर्म करो नहीं तुम्हारा जन्म देने से मुझे क्या लाभ ! शंकर ने कहा मा निश्चय मानो जिस समय तुम मुझे याद करोगी रात हो चाहे दिन में चाहे जैसी अवस्था में रहूंगा तुरन्त आ उपस्थित हूंगा और शरीरपात होने पर मैं ही तुम्हारी क्रिया कर्म भी कर दूंगा। यह कदापि मन में न लाओ कि यह विधवा मा को छोड़ संन्यास धारण कर चला गया बरन तुम्हारे पास रह जो उपकार करता उससे सौगुना अधिक उपकार मैं करूंगा। आंसू बहाती हुई मा को इस तरह आश्वासन दे इस के सन्तोष के लिये घर से थोड़ी दूर पर एक विष्णु मन्दिर में संन्यासी हो जा रहने लगे। यहां कुछ दिन रह मा से आज्ञा पाय देशाटन के लिये केवल दण्ड और कमण्डलु अपने साथ लै रात ही को पश्चिम दिशा की ओर पधारे और अनेक देश, नगर, वन, पर्वत में घूमते हुये जीवमात्र में ब्रह्म की बुद्धि रख गौड़ पाद के शिष्य गोविन्द नाथ के आश्रम में पहुंचे। जहां के वृक्षों को देख मालूम होता था कि यह किसी महात्मा का आश्रम है वहां के संयमी मुनि-जन इन्हें गोविन्दनाथ की गुफा के पास लेगये। शंकर तीन वार उस गुफा की परिक्रमा कर प्रणतांजलि हो गोविन्दनाथ की स्तुति करने लगे। शेषशायी गरुड़ध्वज विष्णु भगवान् की पर्यङ्कता को धारण किये जो अपने शिष्य परंपरा पर कृपा कर जगत् के उपकार के लिये पतंजलिमुनि हुये उपरान्त अब इस शरीर में प्रगट हो व्यास पुत्र शुकदेव के शिष्य गौड़पाद से ब्रह्म विद्या का अभ्यास कर उस के संस्थापन को गोविन्दनाथ कह लाये मैं आपको बार २ प्रणाम करता हूं। इनकी यह स्तुति सुन समाधि से चित्त हटाय गोविन्द नाथ ने पूछा आप कौन हो। शंकर ने उत्तर दिया मैं न पृथ्वी हूं न जल हूं न तेज हूं न वायु हूं न आकाश हूं न इन पांचो के गुण शब्द स्पर्श रूप रस गन्ध हूं न इन गुणों की ग्रहण करने वाली इन्द्रियां हूं इन सबों से जो बच गया वही शिवरूप शुद्ध चैतन्य मैं हूं। उप-निषद् और वेदान्त विद्या का सार यह इनका उत्तर सुन गोविन्दनाथ बोले हम समाधि दृष्टि से देख इस बात को जान गये कि तुम साक्षात् सदाशिव के अवतार शंकर नाम से प्रगट हुये हो। शंकराचार्य ने तब संप्र-

दाय के परि पालन निमित्त और ब्रह्मविद्या की प्राप्ति के लिये इनके चरण कमलों की पूजा कर इन्हें अपना गुरू बनाया। गोविन्दनाथ ने भी इनकी गुरुभक्ति और सेवा से प्रसन्न हो चारों वेद का सार ब्रह्मविद्या का उपदेश किया और वेदान्त सूत्र पर भाष्य बनाने की आज्ञा दे काशी जाने के लिये कहा तब यह गुरू की आज्ञा पाय उनके चरण पंकज को मन मानस में रख प्रणाम कर वहां से काशी को पधारे।

एक दिन मध्याह्न के समय शिष्यों के साथ गंगास्नान को जाते हुये एक डोम को चार भयानक शिकारीकुत्तों को साथ लिये रास्ता रोके खड़ा हुआ देख उसका स्पर्श बचाने के लिये रास्ते से हट जाने को कहा। डोम बोला "एकमेवाद्वितीयम्" "एषआत्मा अपहतपाप्मा" "निरवद्यं निरंजनम्" "असंङ्गोयं पुरुषः"—"सत्यं ज्ञानमनन्तंब्रह्म" "विज्ञानमानन्दम्" "अर्थात् यह आत्मा एकही और अद्वितीय है। यह आत्मा पापरहित है अनिन्द्य और अविनाशी है। वह पुरुष संग रहित है। ब्रह्म जिसका अन्त नहीं है सत्य और ज्ञानरूप है आत्मा ज्ञान मय आनन्द रूप है इत्यादि सैकड़ों श्रुति वाक्यों के जागरूक रहते तुम ऐसे प्रसिद्ध वेदान्ती को ब्राह्मण और चाण्डाल में भेद की कल्पना आश्चर्य है। मुझे निश्चय हो गया कि दण्ड कमण्डलु धरे काषाय वस्त्र पहने बोलने में पटु पर ज्ञान का लेश भी नहीं रखते भेष मात्र से ये धूर्त गृहस्थों को ठगा करते हैं। जो तुमने कहा दूर हट सो यह देह को हट जाने के लिये कहा या आत्मा को जो देह में विद्यमान है। मैं पवित्र शुद्ध कुल में उत्पन्न ब्राह्मण हूं तू महा नीच की जाति डोम है यह झूठा आग्रह तुम को क्यों है? इस बात को तुम क्यों नहीं देखते कि वह पुराण पुरुष एक ही है जो घट २ में व्याप्त है। अचिन्त्य, अव्यक्त, अनन्त, निर्विकार उसे परब्रह्म का स्वरूप मोह में आय भूले हुये इस क्षणिक कलेवर में अहंभाव तुमको क्यों है। विद्या पढ़कर भी मुक्ति का मार्ग छोड़ तुच्छ लोकैषणा तुमको क्यों लगी हुई है? अचरज है कि उस परमेश्वर के माया जाल में महान् लोग भी फँसे हुये हैं।

महानीच अंत्यज की ये बातें सुन शंकर विस्मित हो भेद बुद्धि त्याग बोले आत्मज्ञानी तुम्हारे में मैं अंत्यज की बुद्धि त्याग करता हूं। परमात्मा सब जीवमात्र में व्याप्त है जिसे यह दृढ़ निश्चय है वह चाण्डाल हो या ब्राह्मण हो बन्दना के योग्य है। विष्णु से लेकर फतींगे तक में आत्मा व्याप्त है यह बुद्धि जिसे है वह डोम भी मेरा गुरू है। उपरान्त वह डोम साक्षात् सदा शिवरूप हो अनेक आशीर्वाद के उपरान्त कहने लगा। मैं तुम से अत्यन्त प्रसन्न हूं तुम वेदान्त सूत्रों का भाष्य बनाय सांख्य और कणाद के मत के अनुयायी तथा दूसरे लोगों का जो भ्रम में पड़ वेदान्त सूत्रों का उलटा अर्थ करते हैं उनका खण्डन करने में सब भांत समर्थ होगे तुम्हारे भाष्य को मनुष्य की क्या देवता भी आदर करेंगे। ब्रह्म और जीव में भेद अभेद वादी भास्कर, परम शाक्त अभिनव गुप्त, ब्रह्म और जीव में भेद के मानने वाले महाशैव नीलकण्ठ, प्रभाकर, मीमांसकों के परमाचार्य मण्डन आदि पण्डितों को जीत अद्वैत महाविद्या का जगत् में प्रचार तुम्हीं कर सकोगे। यह कह सदाशिव अन्तर्ध्यान हो गये शंकर भी शिष्यगण सेवित गंगा स्नान को गये। उपरान्त मार्ग के सब तीर्थों की यात्रा करते हुये बदरिकाश्रम को पधारे तहां एकान्त स्थान में कुछ दिन बास कर वेदान्तसूत्र भगवद्गीता सनत्सुजातीय और नृसिंहतापिनी पर भाष्य रचा इस समय तक इन की १२ वर्ष की अवस्था होगई थी। सिवाय इसके उपदेश सहस्री इत्यादि और बहुत से ग्रन्थ रचे जिन ग्रन्थों को पढ़ कर या सुन कर अविवेक के बन्धन से मुक्त हो यती सन्यासी परमानन्द देने वाली शान्ति लाभ करते हैं। बदरिकाश्रम में एक वर्ष ठहर पद्मपाद आदि प्रधान शिष्यों को अपना बनाया शारीरक भाष्य तथा दूसरे ग्रन्थों को तीन बार पढ़ाय फिर काशी लौट आये और उस समय के काशी के प्रधान और प्रसिद्ध पण्डित भास्कर अभिनव गुप्त मुरारि मिश्र विद्येन्द्र प्रभाकर आदि दार्शनिकों को बाद में परास्त करते देख काशी के लोग इस बालक की लोकोत्तर बुद्धि पर अचरज में आये। एक दिन गंगा जी के तट पर शिष्यों को पढ़ा रहे थे अनेक शंकाओं का समाधान करते मध्याह्न

हो गया, यक भी गये थे ज्योंही उन शिष्यों की सन्ध्या पूरी कर उन्हें विसर्जन किया चाहते थे कि एक ब्राह्मण ने बूढ़े के रूप में शंकर से जाकर पूछा तुम कौन हो और यह क्या पढ़ा रहे हो । शिष्यों ने उत्तर दिया यह हमारे पूज्यपाद गुरू हैं इन्हीं ने समस्त उपनिषदों का सार शारीरिक सूत्रों का भाष्य रचा है और वही हम लोगों को पढ़ा रहे हैं। बूढ़ा बोला शारीरक सूत्रों का भाष्य करना साधारण बात नहीं है. हमें कैसे विश्वास हो अच्छा तो कुछ कहो हम सुनै कैसा भाष्य तुम्हारे गुरू ने किया है । । शंकर खुद आप बोल उठे शारीरक सूत्रों के अर्थ जानने वाले गुरुवरों को अनेक प्रणाम है उन सूत्रों को भाष्यकार होने का मुझे अभिमान नहीं है तथापि आप जो पूंछे उसे मैं कहूं । तब उस वृद्ध ने इन से तृतीय अध्याय के आरम्भ में "तदन्तरप्रतिपत्तौ रंहति संपरिष्वक्तः प्रश्ननिरूपणाभ्याम्" इस सूत्र की वाख्या करने को कहा—भाष्यकार शंकर ने उत्तर दिया—इन्द्रियों के नाश होने पर अर्थात् देह का जब विनाश हो जाता है तब आत्मा देह का बीज भूत सूक्ष्म से आवेष्टित हो देहान्तर में जाता है। ताण्ड्य ब्राह्मण की श्रुति में गौतम और जाबालि के प्रश्नोत्तर से यह बात सिद्ध और प्रमाणित है। शंकर के इस व्याख्यान को उस वृद्ध ब्राह्मण ने अपनी अद्भुत वावदूक शक्ति से सौ तरह से खण्डित किया शंकर ने भी इसके खण्डन में हज़ारों दोष निकाल अपने व्याख्यान का फिर मण्डन किया। इस तरह पर इन दोनों में बराबर आठ दिन शास्त्रार्थ और खण्डन मण्डन होता रहा । नवें दिन विवाद आरम्भ होने पर पद्मपाद ने अपने गुरू को चेताया कि सम्पूर्ण वेदान्त के रहस्य जानने वाले ये व्यासदेव हैं जो नारायण की अंशकला हैं और आप भी शिव के अवतार शंकर हो तब यह विवाद कल्प पर्यन्त भी काहे को कभी समाप्त हो सकता है । पद्मपाद के चेताने पर शंकर भक्ति से पुलकित गात्र हो व्यासदेव की बहुत सी स्तुति कर बोले आप के शिष्य प्रशिष्य की योग्यता भी अपने में न रख जो मैंने आप के शारीरक सूत्रों के भाष्य करने का साहस किया इस मेरी धृष्टता को क्षमा कीजिए यह कह भाष्य उनके अर्पण किया। व्यास जी पुस्तक

लै उसे प्रत्येक स्थल में जहां २ गूढ़ अर्थ रक्खे गये थे सबको अच्छी तरह देख और विचार कर बोले। कौन कहेगा कि यह तुमने साहस किया है तुम तो कोई महानुभाव महापुरुष मालूम होते हो हमारे गूढ़ार्थों को विशद करने की पाण्डित्य शक्ति सिवाय तुमारे और किसमें थी जो उनको स्पष्ट करता अब तुम इसे पढ़ो पढ़ाओ और जगत् में प्रचार करो। यह तुम्हारा भाष्य सर्वसम्मत होगा तुम्हारा सब भांत मङ्गल हो अब मैं तुमसे बिदा होता हूं। शंकर विनीतभाव से प्रणाम कर फिर बोले। आपकी कृपा से यह भाष्य प्रचलित हो चला है और पण्डित मण्डली में सर्वसम्मत भी है इसका सहारा लै मैं अनेक वादियों को भी ध्वस्त कर चुका हूं अब एक यह प्रार्थना है कि आप मुहूर्तमात्र और यहां ठहरें जब तक मणिकर्णिका में मैं अपना शरीर आपके सामने त्याग आयुष्य का अन्त करूं। व्यासदेव ने कहा अभी यह अद्वैतवाद के प्रतिकूल वादी अपनी पूरी प्रौढ़ता को नहीं पहुंचा अभी इसकी अत्यन्त बाल्यदशा है इस लिये तुम जननी के समान हो इसका पोषण कुछ दिनों तक और करो। बहुत से अद्वैतवाद के प्रतिकूल वादी मत्तगयन्द से चिग्घार रहे हैं जब तक वे निरस्त न हों तब तक तुम्हारा इस पृथ्वी तल में वास करना अत्यन्त उपयोगी है। तुम्हें १६ वर्ष हुए हैं अभी १६ वर्ष आप और रहें और उपनिषदों का भी भाष्य रचैं यद्यपि विद्वानों ने उनका भाष्य रचा भी है परन्तु जो मेरा हृदय है वह तुम्ही उन्में प्रकाश कर सकोगे। हम आशीर्वाद देते हैं कि तुम्हारे किये भाष्य संसार में जब तक सूर्य चन्द्रमा रहैं तब तक प्रतिष्ठा पाते रहैं। यह कह वह वृद्ध अन्तर्घ्यान हो गया और शंकर ने भी इसके उपरान्त दिग्विजय की इच्छा से शारीरक सूत्र के वार्तिककार कुमारिल भट्ट से मिलने को दक्षिण दिशा की ओर प्रस्थान किया। पहले प्रयाग पहुंच गंगा और यमुना के संगम में स्नान किया यहां यह सुना कि कुमारिल ने शास्त्रार्थ में अपने गुरु को परास्त किया था इस लिये गुरू की अवज्ञा जनित दोष से मुक्त होने को तुषानल में प्रवेश कर रहे हैं। जल्द उस स्थान में गये जहां कुमारिल चिता के बीच बैठे हुये थे। फूस की आग

चारो ओर दधक रही थी और प्रभाकर मुरारि मिश्र इत्यादि तुषानल के सब ओर खड़े रो रहे थे, कुमारिल का सर्वाङ्ग जल गया था केवल मुख मात्र खुला था। अत्यन्त प्रसन्न हो बोले आप ऐसे महात्मा का दर्शन विशेष कर मेरी मरण अवस्था में बड़े पुण्य का उदय है असार संसार सागर में डूबते हुओं को आप सरीखे उदारचित्त महात्माओं का सत्संग ही उसके पार जाने को नौका है। तब शंकर ने अपना भाष्य कुमारिल को दिखलाया। यह उसे देख बोले मैंने भी शारीरक सूत्रों के आठ सहस्र वार्तिक बनाये हैं यदि तुषानल में प्रवेश न किये होते तो उन वार्तिकों को आपके बनाये भाष्य में समावेशित कर देते। आपका यह प्रबन्ध बहुत उत्तम रचा गया है कर्मकाण्ड और ज्ञानकाण्ड दोनों का विधिवत् निर्णय इसमें किया गया है और नैयायिकों की युक्ति का भी अच्छी तरह खण्डन इसमें है। बौद्धों से वेदमार्ग को लुप्त होता देख मैंने उसके शास्त्रों को पढ़ पीछे उन से शास्त्रार्थ कर वाद में उन्हें परास्त कर फिर से वेदमार्ग का प्रचार करवाया तो, किन्तु गुरुनिन्दा का पाप मेरे अन्तरात्मा को डंक सा मार रहा था। दूसरे यह कि जैमिनि प्रणीत मीमांसा शास्त्र में अभ्यास कर मैंने ईश्वर का भी निराकरण किया। इन दो पापों के दूर करने को तुषानल में प्रवेश ही मैंने प्रायश्चित समझा पर अब आपका दर्शन पाय मैंने उन दोनों पापों से सहज ही में मुक्ति पाई तब यह तुषानल प्रवेश निरर्थक है। मैंने जब सुना कि आपने भाष्य बनाया है तब मेरी इच्छा हुई की शावर भाष्य पर जैसा वृत्ति मैंने रचा है वैसा तुम्हारे शारीरक भाष्य पर भी रच पण्डितों में प्रतिष्ठा का अधिकारी हूं किन्तु अब उसका चरचा चलाना भी व्यर्थ है। शंकर कुमारिल की ये बातें सुन बोले यह हम जानते हैं कि बौद्धों के संहार के लिये साक्षात् स्वामिकार्तिक आप प्रगटे हो उन दोनों पातकों की कहां सम्भावना भी तुम्हारे में नहीं है तब तुषानल में आपका प्रवेश केवल धर्म की शिक्षा के लिये है। यदि आप कहें तो कमण्डलु के जल से सींच मैं आप को जिला दूं और आप की इच्छा है तो मेरे भाष्य पर वृत्ति रचिये कुमारिल ने फिर कहा—हे अर्हत्तम ! मैं जानता

हूं आप अद्वैतबाद के स्थापन के लिये प्रगट हुये हो थोड़ा पहिले आये होते तो पाप से छुटकारा पाने को मैं तुषानल में प्रवेश न करता । मेरे भाग्य में यह नहीं था कि शावर भाष्य की भांत आप के भाष्य पर भी कुछ लिख प्रतिष्ठा पाता मैं जानता हूं आप महायोगी हो, मरे हुये को भी जिला देने में समर्थ हो तो मैं तो अभी सजीव हूं। अब ऐसा ही होने दीजिये मैं तुषानल में प्रवेश का संकल्प कर चुका हूं तो उसे मिथ्या नहीं किया चाहता। अब आप तारकब्रह्म का उपदेश कर मुझे कृतार्थ कीजिये और दिगन्तविश्रान्त यश स्थापन के लिए मण्डन मिश्र को जाकर जीतिये। वह पृथ्वीतल में विश्वरूप इस नाम से प्रसिद्ध है वैदिक कर्म में तत्पर कर्मकाण्ड के लिये बड़ा हठी है प्रवृत्तिशास्त्र में लगा हुआ बड़ा कर्मकाण्डी है। निवृत्तिमार्ग का बड़ा विरोधी है उसे किसी तरह अपने बश में लाइये उसकी स्त्री सरस्वती साक्षात् सरस्वती महा पण्डिता है उसे मध्यस्थ कर मण्डन को बाद में परास्त कीजिये। थोड़ा ठहरिये जब तक मैं आप का चरण पंकज अपने हृदय में धारण कर आप का स्वरूप देखते हुये इन प्राणों का अन्त करूं। कुमारिल की इच्छा पूरी कर और तारक महामन्त्र के उपदेश से वैष्णवों की गति उन्हें दे शंकर स्वामी वहां से मण्डन की ओर सिधारे।

माहिष्मतीपुरी में पहुंच मण्डन मिश्र का पता पूछते हुये घर के समीप मार्ग में मण्डन की दासी को जल के लिये जाते हुये देख उस से पूछा मण्डन का घर कहां है? दासी ने उत्तर दिया द्वार पर जहां पिजड़ों में तोता मैना परस्पर यह विवाद करते हों कि वेद स्वतः प्रमाण हैं या वेद का ईश्वर वाक्य होना किसी दूसरे प्रमाण की आकांक्षा रखता है। सुख दुःख आदि कर्म का फल मनुष्य को अपने कर्म के अनुसार मिलता है या उसका देने वाला कोई अजन्मा सर्वज्ञ कर्तुमकर्तुमन्यथाकर्तुं समर्थ सर्वशक्तिमान् ईश्वरपद वाच्य है। यह जगत् कर्म की अनादि धारा के अनुसार प्रवाह रूप से नित्य है या कोई इसका उत्पन्न करने वाला है इत्यादि विवाद जहां तोता मैना में होते देखो उसे मण्डन का घर जानो।

स्वतःप्रमाणं परतःप्रमाणं कीराङ्गना यत्र गिरं गिरन्ति ।
द्वारस्थनीडान्तरसन्निरुद्धा जानीहितन्मण्डनपण्डितौकः॥
फलप्रदं कर्मफल प्रदोऽजः कीराङ्गना यत्र गिरं गिरन्ति ।
द्वारस्थनीडान्तरसन्निरुद्धा जानीहि तन्मण्डन पण्डितौकः॥
जगद् ध्रुवं स्याज्जगद ध्रुवंस्यात्कीराङ्गना यत्र गिरं गिरंति।
द्वारस्थनीडान्तर सन्निरुद्धा जानीहि तन्मंडनपंडितौकः

दासी के बताये हुए पहिचान के अनुसार द्वार पर जा द्वार बन्द देख भीतर जाना सब भांत असम्भव जान योगबल द्वारा आकाश मार्ग से मण्डन के घर के अंगने में जा उतरे और मण्डन को श्राद्ध के लिए बैठा हुआ जैमिनि और व्यास को अवनेजन देता हुआ देखा। मण्डन श्राद्ध के समय गेरुआ वस्त्र पहिने सन्यासी का निषिद्ध दर्शन समझ क्रोध में भरा हुआ बोला।

कुतो मुण्डयागलान्मुण्डी पन्थास्ते पृच्छ्यते मया ।
किमाह पन्थास्त्वन्माता मुण्डेत्याह तथैवहि ॥

घर के द्वार का कपाट बन्द रहने पर भी श्राद्ध के समय अयोग्य दर्शन तू किस रास्ते से आया ।

शंकर—कुतः" "इस पद का अर्थ बदल कर बोले (कुतः अर्थात् कहां तक तू ने मुड़ाया है) मैं गले तक मुड़ाकर मुण्डी हुआ हूं ।

मण्डन—(यह जान कि इसने हमारे प्रश्न को नहीं समझा फिर बोला) मैं पूछता हूं किवाड़ बन्द थे तू किस रास्ते से आया।

शंकर—सब लोग इस संसार में किस रास्ते से आते हैं यह तुम अपनी मा से जाकर पूछ आओ ।

मण्डन—(इनके उत्तर का मर्म न जान फिर बोला) मैं रास्ता पूछता हूं तू कहता है तेरी मा मुण्डी है ।

शंकर–तेरी मा मुण्डी है तो हो।

मण्डन–अहो पीता किमु सुरा नैव श्वेता यतः स्मर।
किं त्वं जानासि तद्वर्णमहं वर्णं भवान् रसम्॥

क्या तू ने "सुरापीता" मद पिया है ?

शंकर–( "पीता" इस शब्द पर आक्षेप कर उत्तर दिया ) पीता अर्थात् पीली रंग की मद तूने पिया है श्वेत रंग की नहीं ?।

मण्डन–याद कर किस रंग की मद तूने पिया।

शंकर–रंग हम जान सक्के हैं पर उसका रस स्वाद तुम।

मण्डन–अरे ! एक गदहे का बोझ कन्था ( गुदड़ी ) तो लादे है शिखा और जनेऊ से तुझे कौनसा बोझ था जो उसे त्याग दिया ?।

शंकर–मूढ़ ! तेरे बाप से भी न उठ सके सो गुदड़ी तो मैं धारण किये हूं किन्तु शिखा और जनेऊ श्रुतिओं को बोझ था नहीं तो श्रुति ने क्यों आज्ञा दिया जिस दिन वैराग्य मन में स्थान करले उसी दिन शिखा सूत्र त्याग सन्यास धारण करले।

"यदहरेव विरजेत्तदहरेव प्रव्रजेत्" "ब्रह्मचर्याद्वा गृहाद्वा वनाद्वा""न कर्मणा न प्रजया न धनेन वा त्यागेनैकेन अमृतत्वमानशुः"–"अथ परिव्राड्विवर्णवासा मुण्डोऽपरिग्रहः"

मण्डन–सात भांवर की पाणिगृहीतीभार्या के भरण पोषण में सब भांत असमर्थ शिष्य बेचारों पर पुस्तक का बोझ लदवाने के लिए तू ब्रह्मज्ञानी हुआ है।

शंकर–चिरकाल तक गुरुकुल में वास और गुरुसेवा का अनेक क्लेश सहना दुर्घट समझ ब्रह्मचर्य जल्द समाप्त कर स्त्री की सेवा में तत्पर रहने ही से तू भी क्या कर्मकाण्डी हुआ है।

मण्डन—दरवाज़े के डेहुरीदार पहरुओं को धोखा दे तू क्यों यहां चोरों के समान घुस आया।

शंकर—तू भी भिक्षुकों को बिना अन्न दिये चोरों की तरह क्यों भोजन करता है।

मण्डन—शान्त शील सूक्ष्मबुद्धि विरक्तों के योग्य कहां ब्रह्म का विचार कहां तू ऐसा चपल निपट अज्ञान। मैं समझता हूं जीभ के स्वाद के लिए सन्यासी का भेष तूने धर लिया है ?।

शंकर—श्रद्धालु और शुद्धचित्त वालों से करने योग्य स्वर्ग के साधन कहां यज्ञादिक वैदिक कर्म; कहां महामदान्ध दाम्भिक कुटिल चित्त तेरा यह व्यर्थ का वाग्वाद—मालूम हुआ संसार के विषय सुखों के स्वाद के लिये यह सब ढङ्ग तू ने रच रक्खा है।

मण्डन—बिना बुलाये तू क्यों हमारे घर आया ?।

शंकर—हम अतिथि के भेख में विष्णुरूप हो तुझे कृतार्थ करने आये हैं। दोनों में इस तरह देर तक वाक् कलह के उपरान्त जैमिनि का इशारा पाय व्यासदेव बोले—मण्डन रागद्वेष विहीन इस महात्मा आत्मज्ञानी के प्रति तुम्हारा यह आचरण सर्वथा अयोग्य है। अभ्यागत विष्णुरूप होते हैं तुम इन्हें भिक्षा दे प्रसन्न करो और अपराध क्षमा कराओ—व्यासदेव की आज्ञा पाय मण्डन ने आदर के साथ शंकर से भिक्षा के लिये प्रार्थना किया। शंकर ने इसे शान्त और विनीत देख कहा मैं तुम से विवाद भिक्षा चाहता हूं और विवाद भी इस प्रण "शर्त" के साथ कि जो शास्त्रार्थ में हारे वह शिष्य होजाय।

मण्डन—मैं अपना अहोभाग्य मानता हूं जो आप मुझ से शास्त्रार्थ की प्रार्थना करते हैं कल मध्याह्न में हमारा और आप का शास्त्रार्थ होगा। इस समय भिक्षा कर मुझे कृतार्थ कीजिये महर्षि व्यास और जैमिनि विवाद में हम दोनों के जय पराजय का निर्णय करने वाले होंगे।

शंकर—हमारी ओर से सरस्वती जो सरस्वती का अवतार है और इस समय तुम्हारी धर्म पत्नी है विवाद का निर्णय करने वाली हो ॥

दूसरे दिन पण्डितों की सभा में शिष्य समेत मण्डन आ उपस्थित हुये और पति की आज्ञा पाय सरस्वती भी वहां आ सुशोभित हुई। फूलों की एक२ माला दोनों के गले में पहिनाय बोली जय पराजय की पहिचान यही माला होगी। मैं अपने पति और इस भिक्षुक के लिये भोजन सिद्ध करने जाती हूं पर नित्य इसी तरह माला पहिना दिया करूंगी माला के फूलों का कुम्हला जाना ही पराजय की पहिचान होगी। दिन २ पण्डितों की मण्डली बढ़ती ही जाती थी शास्त्रार्थ के समय दोनों पद्मासन होकर बैठते थे दोनों ने प्रसन्न मुखारविन्द एक दूसरे के हराने को क्रोध या वाक् छल को अलग कर दिया था। मध्याह्न होने पर सरस्वती दोनों को भोजन करा जाती थी पांच या छः दिन बराबर इसी क्रम पर दोनों में वाद होता रहा—अनेक भिन्न२ विषयों पर शास्त्रार्थ के उपरान्त मण्डन ने पूछा यतिराज? आप जो जीव और ब्रह्म में अभेद मानते हैं और उसमें भी ब्रह्म को नित्य शुद्ध बुद्ध उदासीन मानते हो सो क्योंकर सङ्गत हो सक्ता है। क्योंकि जब ब्रह्म में कर्तृत्व भोक्तृत्व गुण नहीं है तो कर्तृत्व-भोक्तृत्वविशिष्ट जीव के साथ उसका अभेद कैसे निभ सक्ता है। जो श्रुतियां इसमें प्रमाण देते हो वे केवल भूतार्थ सत्य बात की प्रतिपादिका मात्र हैं। भूतार्थ प्रत्यक्षादि प्रमाण सापेक्ष्य है इस लिये जीव और ब्रह्म का अभेद युक्ति रहित होने से प्रमाण के योग्य नहीं है।

शंकर—"तत्त्वमसि श्वेतकेतो" इत्यादिक श्रुतियों में जो उद्दालक आदि महर्षियोंने शिष्य श्वेतकेतु को उपदेश किया है कि हे श्वेतकेतो! वह आत्मा या ब्रह्म तुम्ही हो—ऐसा ही जनक के प्रति याज्ञवल्क्य ने भी कहा है:—

**अभयं वै जनक! प्राप्तोसि तदा आत्मानमेवावेद् अहम्ब्रह्मास्मीति तस्मात्तत्सर्वमभवत्। तत्र को मोहः कः शोक एकत्वमनुपश्यतः—**

हे जनक! जब तुम को यह ज्ञान होगया कि हमी वह हैं तब तुमको फिर किसी तरह का भय न रहा—जो सब को एक देखते हैं उनको

मोह या शोक कहां। प्रत्यक्ष प्रमाण के अतिरिक्त शब्द प्रमाण न मानने में कौनसी तुम्हारी हानि है।

मण्डन—यद्यपि तत्त्वमसि इत्यादि वाक्यों से सिद्ध होता है कि ब्रह्म और जीव में अभेद है किन्तु यह अभेद केवल स्तुति के ढंग पर है।

शंकर—यह क्रम कर्मकाण्ड का है ज्ञानकाण्ड का नहीं। निन्दा और स्तुति से जब तक ग्लानि और प्रसन्नता लगी है तब तक ज्ञान का प्रकाश होना दुर्घट है। जब पूर्णज्ञान मन में स्थान पाता है तब मनुष्य जीव और ब्रह्म में अभेद समझने का अधिकारी हो सक्ता है। इस प्रकार शंकर मण्डन को बराबर बाद में परास्त करते रहे। शंकरदिग्विजय में जो दोनों का विवाद विद्यारण्य ने लिखा है उससे निश्चय होता है कि शंकराचार्य ही की सामर्थ्य रही कि मण्डन को बाद में परास्त किया। विद्यारण्य ने इस प्रकरण को ऐसे ढंग से लिखा है कि मीमांसा और वेदान्त में जिसे जितना ही अधिकार हो उसे उतना ही दोनों शास्त्रों के पाण्डित्य का रस मिल सक्ता है। अस्तु छठवें दिन सरस्वती आकर मण्डन के गले के हार का फूल कुम्हलाया हुआ देख जैसा शंकर को भिक्षा के लिये नित्य कहा करती थी उसी तरह मण्डन को भी उस दिन भिक्षा के लिये बुलाया और शंकर से कहने लगी दुर्वासा के शाप से मुझे मृत्युलोक में जन्म लेना पड़ा था मैं अब ब्रह्मलोक में जाती हूं आप का कल्याण हो। मण्डन के सदृश पृथ्वी पर दूसरा पण्डित इस समय नहीं है इसे तुम ने बाद में परास्त किया मानों समस्त भूमण्डल को जीत चुके।

सरस्वती की ये बातें सुन शंकर ने अरण्य दुर्गा के मन्त्रों से उसे बांध बोले भगवती मैं जानता हूं आप साक्षात सरस्वती हो किन्तु यह सेवक जब तक आप को जाने के लिये न कहै तब तक आप ठहरें।

मण्डन बाद में अपने को हारा जान हठ छोड़ फिर बोला योगिराज! मीमांसा का खण्डन आप करते हैं तो जैमिन महामुनि उस शास्त्र के निर्माण में क्यों प्रवृत्त हुये महर्षियों के वाक्य क्यों कर झूठ हो सकते हैं—ऐसा

सन्देह करता हुआ मण्डन को देख शंकर फिर बोले जैमिनि महर्षि का वाक्य कहीं पर मिथ्या नहीं है किन्तु हमलोग उन वाक्यों का आशय न समझ उनका उलटा अर्थ कर रहे हैं। पटुबुद्धियों को भी ब्रह्म के सूक्ष्म विचार में असमर्थ जान ब्रह्म के प्राप्ति का साधन केवल सुकृत और पुण्यातिशय जान कर्मकाण्डों के बिधान के लिए जैमिनिने मीमांसा शास्त्र बनाया—कर्मकाण्ड के सम्यक् विधान करने से जब अन्तरात्मा पवित्र होता है तो उसके लिए ब्रह्म की प्राप्ति फिर दुर्घट नहीं रह जाती। इस लिए मीमांसाशास्त्र वेदान्त का अधिकारी कर देने का अङ्ग है न कि प्रधान शास्त्र जैसा तुम लोगों ने अब तक समझ रक्खा था। इस विषय में मण्डन ने जो २ शंकायें की उन सबों का शङ्कर बराबर समर्थन करते गये। कई एक प्रश्नों में मण्डन का एक यह भी प्रश्न था कि यदि जैमिनि को परमेश्वर का सच्चिदानन्द होना स्वीकार था तो परमेश्वर से भिन्न कर्म को सुख दुःख आदि शुभ अशुभ कर्म का फल देने वाला मान परमेश्वर नहीं है ऐसा कह उसका निराकरण उन्होंने क्यों किया? शङ्कर ने कहा। कार्य कारण वादी कणाद का मत है कि जैसा घट से हम उस घट के बनाने वाले का अनुमान कर लेते हैं इसी तरह कार्य रूप इस जगत् को देख कारण रूप इसके बनाने वाले परमेश्वर का हम अनुमान करते हैं। जैमिनि ने इस तरह पर परमेश्वर की सत्ता या अस्तित्व मानने वाले वैशेषिक के आचार्य कणाद को उत्तर दिया है न कि श्रुतियों में प्रतिपादित ईश्वर के निराकरण में उनका तात्पर्य है। उपनिषदों के अभ्यास से वह ब्रह्म जाना जाता है। अवेदवित् उसे किसी तरह नहीं जान सकते इसी तात्पर्य को पुष्ट करने वाली श्रुति भी हैं "तंत्वौपनिषदं पुरुषं पृच्छामि—नावेदविन्मनुते तं बृहन्तम्"—तो सिद्ध हुआ कि केवल अनुमानगम्य ईश्वर के खण्डन में जैमिनि का अभिप्राय है। इस गूढ़ अभिप्राय को न समझने वाले ही जैमिनि प्रणीत पूर्व मीमांसा शास्त्र को अनीश्वरवाद कहते हैं। जैमिन के हृदय का अभिप्राय शङ्कर के इस समाधान पर मण्डन सरस्वती और सभा में जितने लोग बैठे थे सब प्रसन्न हुये और उनकी गंभीर बुद्धि की प्रशंसा करने लगे। मण्डन पण्डिताई

का सब अभिमान त्याग शंकर का शिष्य हो घर गृहस्थी त्याग सन्यासी होने लगा। सरस्वती तब बोलीं मैं मण्डन की अर्द्धाङ्गिनी हूं जब तक। मुझे भी आप न हरा लें तब तक मेरा पति अभी आधा हारा है इस लिये हमें भी जीत तब पति को आप सन्यासी कर सकते हैं।

शंकर—स्त्रियों से विवाद सदाचार के विरुद्ध है किन्तु अपना सिद्धान्त खण्डन करने में प्रवृत्त स्त्री जाति हो वा दूसरा कोई हो उससे भी वाद करना अनुचित नहीं है। इसी लिये ब्रह्मविद्या के विचार में याज्ञवल्क्य ने गार्गी से विवाद किया। जनक राजर्षि सुलभा के साथ कलह में प्रवृत्त हुये। विचित्र उक्ति युक्तियों में दोनों का सात दिन तक बराबर शास्त्रार्थ होता रहा। सरस्वती ने शास्त्रों के वाग्जाल में इन्हें कहीं पर किसी अंश में कच्चा न पाय सोचा कि यह बाल्य अवस्था ही से सन्यासी हुये हैं इस लिये सर्वज्ञ होकर भी ये रस का विषय काम शास्त्र में सब भांत अपरिपक्व हैं तो उस विषय में इनसे वाद करने में पार ले जा सकती हूं। पूछा बताइये पुष्पधन्वा कामदेव की कितनी कलायें हैं और उनका क्या २ स्वरूप है? कृष्णपक्ष और शुक्लपक्ष में काम की कला पुरुष के किस अंग में रहती है और स्त्री के किस अंग में रहती है? शंकर ने सोचा यदि मैं इस प्रश्न का उत्तर देने से इनकार करता हूं तो अल्पज्ञ होने का कलंक मुझे लगता है यदि उत्तर देता हूं तो यह संन्यासियों के धर्म के विरुद्ध होता है। बोले सुन्दरी एक महीने की अवधि यदि मुझे दो तो मैं कामशास्त्र में भरपूर निपुण हो इसका भी उत्तर आप को दे सकूंगा। तथास्तु ऐसा सरस्वती के अङ्गीकार करने पर शंकर योग बल से खेचरी मुद्रा के द्वारा शिष्य समेत आकाश में उड़ गये, और आखेट को गया वृक्ष के नीचे वन में मोहवश बेहोश मृतक अमरू राजा को पड़ा हुआ ऊपर से देख पद्मपाद नामक अपने शिष्य से कहा। अमरू राजा सौन्दर्य सौभाग्य और रसिकता की सीमा है इसके सौ रानियां हैं जिससे सिद्ध होता है कि यह कहां तक कामी है। मैं चाहता हूं इसी के शरीर में योगबल से प्रवेश कर काम शास्त्र की समग्र कला सीखूं।

यह कह एक पर्वत की रमणीक शिलातल पर जा उतरे जहां स्वच्छ जल से भरा सरोवर और हरे भरे वृक्ष चारो ओर उस पर्वत की शिला को अधिक सोहावनी कर रहे थे। अपने शिष्यों को आज्ञा दिया मैं अब काम कला सीखने को अमरू राजा के शरीर में प्रवेश करता हूं तुम लोग मेरे शरीर की सावधानी से रक्षा करते रहो॥ इसके उपरान्त शंकर की वह देह मृतक हो गई। अमरू तत्क्षण जी उठा रानियां सब बड़ी प्रसन्न हुई। मन्त्री लोग और पुरवासियों को बड़ा आनन्द हुआ सब बड़े अचरज में आये। अमरूशतक नाम का छोटासा एक खण्डकाव्य इस समय में इन्होंने रचा था जो मानो इस कथानक के सत्य होने की गवाही दे रहा है।

हारोऽयं हरिणाक्षीणं लुठति स्तनमण्डले।
मुक्तानामप्यवस्थेयं के वयं स्मरकिंकराः॥

दम्पत्योर्निशि जल्पतोर्गृहशुकेनाकर्णितं यद्वच-
स्तत्प्रातर्गुरुसन्निधौ निगदतस्तस्योपहारं वधू॥
कर्णालंकृतिपद्मरागशकलं विन्यस्य चंचूपुटे।
व्रीडार्ता प्रकरोति दाडिमफलव्यजेन वाग्बन्धनम्॥
एकत्रासनसंस्थितिः परिहृता प्रत्युद्गमाद्दूरत-
स्ताम्बूलानयनच्छलेन रभसा श्लेषोऽपिसंविघ्नितः।
आलापोऽपिन विश्रुतः परिजनं व्यापारयन्त्यन्तिके,
कान्तंप्रत्युपचारतश्चतुरया कोपः कृतार्थीकृतः॥
सा पत्युः प्रथमापराधसमये सख्योपदेशं विना,
नो जानाति सविभ्रमाङ्गवलना वक्रोक्तिसंसूचकं।
स्वच्छैरच्छकपोलमूलगलितैः पर्यस्तनेत्रोत्पला,
बाला केवलमेव रोदिति लुठल्लोलैश्चलैरश्रुभिः॥

सा बालामप्यप्रगल्भमनसः सा स्त्री वयं कातराः,
सा पीनोन्नतिमत्पयोधरयुगं धत्ते सखेदा वयम् ॥
सा कान्ता जघनस्थलेन गुरुणा गन्तुं न शक्तावयम्
दोषैरन्यगुणाश्रितैरपटवो जाताःस्म इत्यद्भुतम् ॥
कोपस्त्वया यदि कृतो हृदि पंकजाक्षि,
सोऽस्तु प्रिये तव किमत्र विधेयमन्यत् ।
आश्लेषमर्पय मदर्पितपूर्वमुच्चैर्मह्यं समर्पय मदर्पित
चुम्बनंच ॥

इत्यादि थोड़े से उदाहरण इनकी प्रौढ़ कविता के यहां पर हम इसलिए उद्धृत किये हैं कि इससे संस्कृतसाहित्यविदग्ध जान सकते हैं कि कैसी सर्वाङ्ग सुन्दर कविता अमरूशतक की है। गोवर्द्धनाचार्य और बिहारी कवि ने इसी की छाया लेकर अपने २ काव्य रचे हैं बल्कि नैषध में श्रीहर्ष ने भी कई जगह अमरूशतक की छाया लिया है। रसनिरूपण और नायिका नायक भेद के ग्रन्थों में सबों ने उदाहरण में इसी के श्लोक दिये हैं।

इस समय अमरू के राज्य भर में कलियुग भी त्रेतायुग के समान मालूम होने लगा और अब राजकाज में तथा कामकेलि में अमरू की लोकोत्तर असाधारण पटुबुद्धि मन्त्री लोग और सब रानियां भी देख जान गईं कि कोई प्राप्तैश्वर्य सिद्ध योगी ने इसके शरीर में प्रवेश कर इसे जिला दिया है। अमरूशतक बनाने का जिकिर शंकरदिग्विजय में माधवाचार्य विद्यारण्य ने भी किया है।

वात्स्यायनप्रोदितसूत्रजातं तदीयभाष्यं च निरीक्ष्य सम्यक्।
स्वयं व्यधत्ताभिनवार्थगर्भं प्रबन्धमेकं नृपवेशधारी ॥

वात्स्यायन का कामसूत्र और उसका भाष्य अच्छी तरह देख भाल नवीन अर्थ गर्भित एक प्रबन्ध राजा के भेष में शंकर ने रचा।

मन्त्री और रानियों ने अपने प्रबन्धकर्ताओं को आज्ञा दे दी और जासूसों को भेज दिया कि तुम जहां कहीं मृतक शरीर पृथ्वी में पाओ उसे ढूंढ कर जलादो। एक महीने से पांच छः दिन अधिक बीत गये पर गुरु को अपने निज शरीर में प्रवेश होते न देख शिष्य सब बड़े शोच में आय विलाप करने लगे तब पद्मपाद उन सबों को समझाय बोला कि दुःख और विषाद त्याग एक चित्त हो यत्न करने से क्या २ नहीं होता। बराबर विघ्न पर विघ्न होने पर भी देवता लोग समुद्र मथने के प्रयत्न में लगे रहे अन्त में अमृत पीने में कृतकार्य हो ही गये। इसलिए हम सब लोग एक मन हो चल कर गुरु को ढूढ़ें। यद्यपि उनका मिलना अति कठिन है किन्तु मनुष्यों में वे जहां कहीं होंगे अपने लोकोत्तर गुणों से न छिपे रहैंगे जहां वे होंगें वहां की प्रजा अति प्रसन्न रोग शोक रहित सब भांत सुखी होंगी। चारो वर्ण अपने २ वर्ण के काम में तत्पर होंगे पृथ्वी वहां की कामधेनु के समान फलती हुई मालूम होगी। पद्मपाद के इस परामर्श को सबों ने पसन्द किया और भेख बदल २ शिष्य सब अनेक बन पर्वत देश ढूंढते हुये अमरू के राज्य में जा पहुंचे यहां अमरू के फिर जी जाने की किंवदन्ती सुन और अमरू को पृथु दिलीप समान प्रकाशमान देख जान गये कि यही हमारे पूज्यपाद गुरु हैं। तरुणी में आसक्त गान सुनने के बड़े रसिक इन्हें पाय वीणा ले गाने वाले के भेख में अमरू की सभा में जा पहुंचे और निर्विघ्न राजसभा में प्रवेश पाय सौ रानियों के मध्य में तारागणों के बीच चन्द्रमा के समान भासमान देखा। राजा की आज्ञा पाय भौंरे पर छोड़ मारफ़त की गीत गाने लगे।

**नेति नेत्यादिनिगमवचनेन निपुणं निषिध्य मूर्तामूर्तराशिम्। यदशक्यनिहनवं स्वात्मरूपतया ज्ञानकोविदास्तत्वमसि तत्वम्॥**

मूर्त अमूर्त यावत् पञ्चभूतात्मक जो इस संसार में शरीरवान् या अशरीरी हो कर इन्द्रियों के द्वारा प्रत्यक्ष हो सक्ते हैं अथवा जो इन्द्रिय गोचर पदार्थ नहीं हैं। उन सबों में नेतिनेति कह श्रुति जिसका निषेध करती है पर जगत् में जो विद्यामान् रहता हुआ निवारण नहीं किया जा सकता इस लिए विद्वान् लोग जिसे अपने स्वरूप में देख कर जान लेते हैं वह तत्त्व परमार्थ वस्तु तुम्ही हो। इस तरह पर वीणा में शिष्यों ने गाया। "तत्त्वमसि तत्त्वम्" प्रत्येक श्लोकों के अन्त मे रख सकल वेदान्त और तत्वज्ञान का सारभूत सात श्लोक विद्यारण्य ने ऐसे लिखे हैं जिन्हें पढ ज्ञान का उद्गार हो आता है।

जिसमें परमार्थ तत्व वर्णन किया गया है ऐसी वीणा की गीत का तात्पर्य समझ और जिस प्रयोजन से राजा के देह में आये थे उसे भी सिद्ध देख शंकर ने तत्काल अमरू के शरीर को छोड़ दिया और वह देह फिर पहिले कासा मृतक होगया। यहां इन का शरीर जो उठा पर राजा के दूतों से चिता में उसे जलता पाय नृसिंह की स्तुति करने लगे।

**लक्ष्मीपते कमलनाभ सुरेश विष्णो वैकुण्ठ कृष्ण मधुसूदन पुष्कराक्ष। ब्रह्मण्य केशव जनार्दन वासुदेव देवेश देहि कृपणस्य करावलम्बम्॥**

इत्यादि १२ श्लोक बड़े ललित पदों में नृसिंह की स्तुति के हैं। नृसिंह जी की कृपा से चिता की आग तत्काल शान्त हो गई। शंकर अपने निज के शरीर में प्रवेश कर शिष्य समेत योग बल से आकाशचारी हो मण्डन के स्थान में जा पहुंचे। मण्डन ने इन को आया देख प्रसन्न चित्त हो इनके चरण कमलों पर साष्टाङ्ग प्रणाम पूर्वक गेह देह सब इन के अर्पण कर दिया। सरस्वती बोली आर्य मैं आप के पाण्डित्य और योगबल को सब भांत जानती थी फिर भी जो मैंने आपके साथ यह विडम्बना किया उसे क्षमा कर अब मुझे निज धाम में पधारने की आज्ञा दीजिये।

शंकर ने सरस्वती को प्रणामपूर्वक विधिवत् पूजन कर कहा जगदम्ब ऋष्यशृङ्ग के स्थान में मैंने जो २ स्थान आप के कल्पित किये हैं उन में आप सदा सन्निधि रह शारदा के नाम से पूजकों के मनोरथ पूर्ण करती रहो। सरस्वती तथास्तु कह अन्तर्ध्यान होगई। मण्डन भी घर में जो कुछ पास था सब ब्राह्मणों को दे इनके शरणमें आया और इन्होंने इसे तत्वमसि महावाक्य का उपदेश कर संन्यासी कर लिया—इस तरह मण्डन को विवाद में परास्त और ब्राह्मवेत्ता कर अनेक वन और पर्वतों की शोभा देखते हुये कामाक्षा में पधारे। वहां से महाराष्ट्र आदि देशों में अपने ग्रन्थों का प्रचार करते और मतमतान्तर का खण्डन करते हुये शिष्य समेत श्रीशैलनामक स्थान में गये। वहां से फिर मल्लिकार्जुन ज्योतिर्लिङ्ग की यात्रा करते हुये कृष्णानदी के प्रान्त देशों में गये और वहां पाशुपत वैष्णव तथा दूसरे २ चक्राङ्कित शूलाङ्कित जुदे २ शिव वा विष्णु के उपासक आये उन सबों को सुरेश्वर और पद्मपाद आदि शिष्यों ने परास्त कर शारीरक भाष्य का उन में प्रचार करवाया। कितने अपना मत छोड़ शंकर के शिष्य होगये कितने मलिनचित्त इनको सब तरह पर क्लेश पहुंचाने के फिकिर में लगे। वहां से समुद्र के तट पर गोकर्णनाथ के स्थान में गये—उपरान्त दो सहस्त्र कुलीन वेदपारग शुद्ध ब्राह्मणों की बस्ती श्रीवलिनामक ग्राम में पहुंचे। वहां प्रभाकर नाम का एक बालक को लाय इनके चरण कमलों पर लुटा दिया। यह बालक राख में छिपी हुई आग के समान आकृति और चेष्टा में महाजड़ गूंगा और बहिरा था। पर स्वरूप और सौन्दर्य में प्रत्यक्ष कामदेव के समान; क्षमा और शान्ति में पृथ्वी का सा; दया और मार्दव आदि गुण विभूषित अपने मुख चन्द्र के प्रकाश से देदीप्यमान था—शंकर अपना हाथ इस बालक के शरीर के अङ्ग प्रत्यङ्ग पर फेर कृपा पूर्ण दृष्टि से देखते हुए बालक के पिता से इस लड़के का सब वृतान्त पूछा। पिता तब कहने लगा—स्वामिन् यह १३ वर्ष का हुआ यज्ञोपवीत संस्कार तो हमने किसी तरह इसका कर दिया पर यह अब तक

एक अक्षर भी नहीं जानता न बोल सक्ता है। साथ के खेलवाड़ी लड़के खेल के लिए बुलाते हैं और जब नहीं जाता तो इसे बहुत सा पीटते हैं तौभी इसे कभी क्रोध नहीं होता। मनमौजी है जो मन में आया उसे कर गुज़रता है किसी के कहे सुने का नहीं है। खाने लगता है तो बराबर खाता ही रहता है रूठ गया तो कई दिनों तक बिना आहार के रह जाता है। ब्राह्मण की ये बातें सुन शंकर ने उस बालक से पूछा तुम कौन हो? शंकर के प्रश्न का उत्तर इस आजन्म मूक बालक ने जो जब से पैदा हुआ आज तक कभी नहीं बोला था बारह श्लोकों में दिया और प्रत्येक श्लोकों के अन्त में "सनित्योपलब्धिःस्वरूपोऽहमात्मा" बराबर कहता गया अर्थात् मैं वही आत्मा हूं जो सदैव चैतन्य स्वरूप है। यह १२ श्लोक हस्तामलकीय बोध के नाम से प्रसिद्ध हैं जिसका गूढ़ अर्थ समग्रवेदान्त और उपनिषदों का सारांश है।

शंकर ने तब कहा जैसा हाथ पर रक्खा हुआ आवले का फल समूचा सबका सब एकसाथ दिखाई देता है वैसा ही इस बालक के उत्तर में समग्रवेदान्त का तत्त्व प्रकाशित है। इसलिये ये श्लोक हस्तामलकीय कहलावेंगे और इस बालक का नाम आज से हस्तामलक होगा—विप्रवर! यह बालक पूर्व जन्म का योगी है घर गृहस्थी के कोई काम का नहीं है। यह कह हस्तामलक को अपने साथ ले वहां से चल दिये और श्रृङ्गगिरि पर्वत पर पहुंचे जहां मतङ्ग ऋष्यश्रृङ्ग आदि मुनि तपस्या कर सिद्ध हुए हैं। जहां से तुंगभद्रा नदी प्रगटी है जो मनुष्यों को स्पर्श मात्र से संपूर्ण कल्याण की देने वाली है। श्रृङ्गगिरि में कुछ दिन ठहर वहां के विद्वानों को अपना बनाया भाष्य और दूसरे २ ग्रन्थ पढ़ाय अद्वैत मत के सिद्धान्त का प्रचार उन लोगों में कराया। वह वही श्रृङ्गेरीपुर है जहां आज तक शङ्कर की स्थापित शारदा देवी की मूर्ति में सरस्वती पहले की हुई प्रतिज्ञा के अनुसार सदा सन्निधि रहती हुई अपने भक्तों की मनोकामना पूरी किया करती हैं। वहां विद्यापीठ नाम का मठ बनवाय भारती संप्रदाय का प्रचार किया जो पुरी गिरी इत्यादि इन की स्थापित दस संप्रदाय में एक संप्रदाय है। वहां तोटक नाम

परमविनीत गुरुभक्ति में बड़ा दृढ़ शिष्य को अपने शरण में ले समग्र विद्यापारङ्गत उसे कर दिया शिष्य भी पीछे से महा विद्वान् हो तोटका चार्य की उपाधि पाई। यह देह की छाया के समान तनमन से दिन रात गुरू की सेवा किया करता था। भूत मात्र पर दया करने वाला अत्यन्त विनीत पहले यह गिरि नाम का महामन्द बुद्धि था। एक दिन अपना अचला धोने के लिए नदी में जल लेने गया था शिष्यों को सन्था देने का समय था किन्तु तोटक को अनुपस्थित जान गुरू ने कहा ठहरो जब तक गिरि भी आ जाय। इस पर पद्मपाद को अपने सपाठी गिरि की मन्द बुद्धि और गुरू की समदर्शिता पर मुसकिराते देख और पद्म पाद की अपनी तीक्ष्ण बुद्धि का घंमड समझ मन से गिरि का स्मरण कर चौदहो विद्या निधान इसे कर दिया। गिरि जो पहले निपट मन्द बुद्धि था नदी से लौट दूर ही से तोटक छन्दों में गुरू की स्तुति करता हुआ आया।

भगवन्नुदधौ मृतिजन्मजले सुखदुःखझषे पतितं व्यथितम्।
कृपया शरणागतमुद्धरमामनुशाध्युपसन्नमनन्यगतिम्॥

मरण जननरूप भवसागर के मुह में गिर कर पीड़ित अनन्य गति मुझ को हे अशरण शरण गुरो अपनी कृपा का करावलम्ब दे उबारिये। तोटक छन्द में ५ श्लोक वैराग्य और आत्मज्ञान का निचोड़ गिरि के मुख से सुन गुरू ने इसे तोटकाचार्य की उपाधि दी। पद्मपाद आदि शिष्यों ने गुरू की महिमा का यह प्रताप जान अचरज में आय अपनी तीक्ष्ण बुद्धि का सब अभिमान दूर कर दिया। तोटकाचार्य का बनाया तोटक नाम का एक छोटा सा प्रकरण वेदान्त का अति उत्तम ग्रंथ अब तक संसार में प्रचलित है। उपरान्त पद्मपाद को देशाटन के लिए आज्ञा दे सुरेश्वराचार्य हस्तामलक आनन्द गिरि आदि शिष्यों के साथ कुछ दिन ऋष्यशृङ्ग पर्वत पर निवास करते रहे।

योगबल से अपनी माता का अन्त समय जान आकाश मार्ग से तत्क्षण वहां पहुंच मा को आतुर दशा में देख उसके चरणों को प्रणाम

कर सब भांत उसे अश्वासन दिया। माता ने भी अपने प्रियपुत्र को देख प्रसन्न हो चिरकाल तक पुत्र के वियोग का सब ताप दूर किया। शङ्कर इसे निर्गुण अद्वैत ब्रह्म का उपदेश देने लगे तब वह बोली बेटा निर्गुण अद्वैत ब्रह्म को मैंने आज तक कभी नहीं सोचा विचारा इस लिये इस अन्तदशा में इन सूक्ष्म विचारों की ओर मेरा मन नहीं जाता मुझे साकार सगुण ब्रह्म का मार्ग बतलाओ तब "अनाद्यन्तमाद्यं परं तत्वमर्थं चिदाकारमेकं तुरीयं त्वमेयम्। हरिब्रह्म मृग्यंपरब्रह्म रूपंमनोवागतीतंमहः शैवमीडे"- इत्यादि भुजंगप्रयातछन्द के १४ श्लोकों में इन्होंने शिव की स्तुति किया शिव जी इस स्तुति से प्रसन्न हो अपने दूतों को भेजा शूल और पिनाक हाथ में लिये दूतों को देख यह बोली मैं इनके साथ नहीं जाना चाहती जन्म से आज तक मैंने कभी शिव की अराधना नहीं किया इससे मुझसे इनका परिचय नहीं है—तब "भुजंगाधिपभोगतल्पभाजं कमलाङ्कस्थलक्ष्लिपतांघ्रिपद्मम्" इत्यादि श्लोकों में विष्णु की स्तुति इन्होंने किया। इस तरह पर अपने पुत्र से इन सरस श्लोकों को पढ़ते हुये सुन पद्मनयन विष्णु भगवान् का हृदय में ध्यान करती हुई योगियों के समान इस ने तन त्याग दिया। यद्यपि संन्यासी के लिये मृतक की दाह क्रिया शास्त्र निषिद्ध है कुटुम्ब के लोग भी इस बात से असन्तुष्ट हुये किन्तु माता से उसकी समस्त और्द्धदेहिक क्रिया की प्रतिज्ञा कर चुके थे इस लिये अपने हाथ पिण्डदान इत्यादि सब कर्म किया। प्रार्थना करने पर भी इन के बन्धुजन जब अस्थि संचयन आदि कर्म में शरीक न हुये तब उनको इन्होंने श्राप दिया कि तुम आज से वेद वहिष्कृत हुये। यति सन्यासी तुम लोगों की भिक्षा भी न ग्रहण करेंगे और तुम्हारे घर के पास ही श्मसान होगा तब से उस देश के ब्राह्मण वेद नहीं पढ़ते न उनके घर सन्यासी भिक्षा करते हैं। इस तरह पर माता की स्वर्गगति दे भगवत् शंकराचार्य अनेक पाखण्डमतों को दूषित करने के प्रयत्न में लगे किन्तु इसमें अपने मुख्य शिष्य पद्मपाद की सहायता की आकांक्षा से कुछ दिनों तक वहीं ठहरे रहे।

पद्मपाद अगस्त्याश्रम पुण्डरीकपुर आदि स्थानों में यात्रा करते

रामेश्वर को गये रास्ते में अपने मामा के घर बोझ समझ पुस्तक सब छोड़ गये थे लौट कर आये तो सुना कि घर में आग के लग जाने से पुस्तक जिसे यह छोड़ गये थे सो भी उसी में भस्म हो गई। मामा इनका द्वैतवादी था घरमें आग लग जाने का एक बहाना मात्र था वास्तव में उसका प्रयोजन शारीरकसूत्र पर जो इन्होंने टीका बनाया था उसको जला देने का था। पद्मपाद को यह वृतान्त सुन बड़ा दुःख हुआ बड़े उदासीन हुए तीर्थ यात्रा से लौट गुरु को आकर प्रणाम किया और अपने बनाये टीका के जल जाने का शोक प्रकाश किया। शंकर ने कहा मैं योग बल से यह वृतान्त जान गया था सुरेश्वराचार्य से कह भी दिया था। तुमने बहुत उत्तम तिलक बनाया था अस्तु पञ्चपादी तक जो तुमने मुझे ऋष्यशृङ्ग पर्वत पर सुनाया था मुझे प्रत्यक्षर याद है लिखलो उसके उपरान्त जो तुमने रचा वह अलबत्ता अब नहीं मिल सक्ता। यह कह पञ्चःपादी तक प्रत्यक्षर वैसा ही लिखा दिया गुरु की इस अद्भुत धारणाशक्ति पर शिष्य सब बड़े विस्मित हुये। अपने भाष्य पर टीका बनाने को पहले गुरु ने सुरेश्वराचार्य को कहा था इस पर पद्मपाद और चितसुख आदि है शिष्यों ने एकान्त में प्रार्थना किया गुरो! सुरेश्वराचार्य वही मण्डन जिसे आपने वाद में परास्त कर अपना शिष्य बना लिया है जन्म से यह प्रवृत्तिमार्ग में रत रहा इस लिये कर्मकाण्ड में जैसी इसकी निष्ठा होगी वैसी ज्ञानकाण्ड में नहीं। इस कारण इसे यदि आप भाष्य का तिलक बनाने की आज्ञा देंगे तो यह उसका अर्थ बिगाड़ कर कर्मकाण्ड की ओर झुका लावेगा। सन्यास भी इसने बुद्धिपूर्वक नहीं ग्रहण किया किन्तु शास्त्रार्थ में परास्त हो लाचारी से इसने सन्यास ग्रहण किया है इससे यह हम लोगों को विश्वासपात्र नहीं जंचता। इसको अपने भाष्य का टीका करने की आज्ञा न दीजिये पद्मपाद आनन्दगिर दोनों बड़े योग्य शिष्य हैं इनमें से एक को इसके लिये आज्ञा दीजिये। सनन्दन ने कहा हस्तामलक भी इसमें सर्वथा समर्थ हैं आपके भाष्य पर इनका वार्तिक बड़ा उत्तम होगा करस्थ आमलक के समान आप के सिद्धान्त को अच्छी तरह जानते हैं इसी लिये आपने इन को हस्तामलक की उपाधि दी है

गुरू ने हँस कर कहा हस्तामलक बाल्य अवस्था में गुरुमुख से एक अक्षर भी नहीं पढ़ा न गुरू के द्वारा इस का उपनयनसंस्कार विधिवत् किया गया है न परमार्थ निष्ठ हो इसने वेदों को पढ़ा है पिता इसे पिशाचग्रस्त समझ मेरे पास लाया था। यह जन्म ही से आत्मज्ञान में लीन चित्त है इस की प्रवृत्ति इस में अच्छी तरह न होगी। यमुना के तट पर संसारिक विषयों से अत्यन्त निवृत साधुवृत्त कोई सिद्ध तपस्या कर रहा था एक ब्राह्मण की कन्या दो वर्ष का अपना बालक उस सिद्ध को तकाय आप स्नान करने चली गई बालक घुटनों से चलता हुआ कगारे से गिर यमुना में डूब गया तब वह विप्र कन्या रोती हुई मृतक बालक को ले सिद्ध के पास आई सिद्ध ब्राह्मणी को रोते देख दयार्द्र हो उसी बालक के शरीर में प्रवेश कर गये वही यह हस्तामलक है। यही कारण है कि इसे कोई पदार्थ अज्ञात नहीं है यह वाह्यवृति से सर्वथा निवृत्त है प्रपंच का तत्व समझने वाला मण्डन के समान दूसरा नहीं है। अस्तु यदि तुम लोगों की इच्छा नहीं है तो सुरेश्वर वार्तिक न बनावेगा तुम सब लोग वार्तिक बनाओ। सुरेश्वर से गुरू ने एकान्त में कहा ये शिष्य सब बड़े मत्सरी हैं तुम्हें नये भिक्षुक समझ इन्हें सन्देह है कि तुम्हारी प्रवृत्तिमार्ग से बासना नहीं हटी इस लिये तुम अपना अलग कोई स्वतंत्र ग्रन्थ रच मुझे दिखाओ। तिलक बनाने के लिये गुरू की आज्ञा न पाय सुरेश्वर बड़े उदासीन हुये और नैष्कर्म्यसिद्धि नाम का एक स्वतंत्र-ग्रन्थ बनाय गुरू के अर्पण किया। आदि से अन्त तक मनोहर पदों में इस ग्रन्थ को देख गुरू अत्यन्त प्रसन्न हुये और शिष्यों को भी दिखलाया गुरू ने आशीर्वाद दिया कि यह तुम्हारा ग्रन्थ सबों से आदर के योग्य होगा। सुरेश्वर ने कहा मैं आचार्य की पदवी पाने के लिये वार्त्तिक नहीं बनाया चाहता था न मुझे संसार में ख्याति पाने का लोभ था गुरू की आज्ञा का उल्लंघन न हो इस लिये मैंने यह परिश्रम किया है। (शिष्यों से) मेरे प्रति जो तुम्हें सन्देह था कि यह तत्वज्ञान में पूर्ण नहीं है इस लिये मैं शाप देता हूं कि तुम लोगों में किसी के बनाये वार्तिक संसार में प्रचार न पावेंगे। क्या बालक तरुण नहीं हो

जाता तरुण पीछे वृद्ध नहीं होता बन्धन और मोक्ष में विरक्ति होना चाहिये गृहस्थ या भिक्षुक हो जाना कोई हेतु इस का नहीं है। सुरेश्वर को अनमन और उदासीन देख गुरू ने तैत्तिरीय वृहकादारण्यक नृसिंहतापिनी पंचीकरणवार्तिक और अपने बनाये दक्षिणामूर्तिस्तोत्र पर वार्तिक रचने की आज्ञा दी। सनन्दन ने भी गुरू की आज्ञा पाय शारीरक भाष्य का टीका रचा जिसका पूर्व भाग पंचपादी के नाम से विख्यात हुआ जो उत्तरभाग का टीका बना वह वृत्ति के नाम से प्रसिद्ध हुआ। सुरेश्वराचार्य से गुरू ने कहा तुम दूसरे जन्म में वाचस्पति होकर मेरे भाष्य का टीका रचोगे। वह सनन्दन के भाष्य की समता पाय सब देशों में पण्डितों के बीच आदरणीय होगा इसी तरह पर आनन्दगिरि आदि शिष्यों को भी पृथक् २ ग्रंथ रचने की आज्ञा गुरू ने दी।

सहस्रों शिष्यों को साथ लिये सुधन्वा राजा पर सबों की रक्षा का भार रख और उसे भी अपने साथ ले श्रीशंकर दिग्विजय की इच्छा से सेतुबन्ध रामेश्वर की ओर पधारे। शैव, शाक्त, चक्राङ्कित, क्षपणक, बौद्ध, सौगत, चार्वाक, जैन, कापालिक आदि अनेक मत के जो २ लोग आये सबों को वाद में परास्त करते और उन के बीच अद्वैत मत का स्थापन करते रामेश्वर पहुंचे तहां रामेश्वर की पूजन आराधन के उपरान्त पांड्य चोल द्रविड़ आदि देश के लोगों को विजय कर कांची पहुंचे यहां शिवकांची का पृथक् निर्माण किया। विनीत भाव से आये हुये अन्ध्रदेश वालों को अपनाय वेंकटाचल को पधारे। वहां से विदर्भदेश में गये तहां भैरवतंत्र में प्रवीण लोग शास्त्रार्थ करने को आये उनको शंकर के शिष्यों ने बाद में निरस्त कर उन्हें अद्वैतमतावलम्बी कर दिया। वहां से कर्णाट देश में जाने की इच्छा करते हुये शंकर से विदर्भ देश के राजा ने विनयपूर्वक निवेदन कर कहा। गुरो! कर्णाटदेश कापालिकों से इतना पूर्ण है कि आप सरीखे महात्माओं के जाने योग्य नहीं है वे सब वेदमार्ग के बड़े द्वेषी हैं जाने से वे आप का अनिष्ट करेंगे। सुधन्वा ने तब हाथ जोड़ कहा योगीराज! धनुष बाण लिए मैं आप की सेवा करने को सब भांति सन्नद्ध हूं तब कापालिक पामर आप क्या कर सक्ते हैं। शंकर वहां से उन

कापालिकों को शास्त्रार्थ में जीतने के लिये कर्णाट देश पधारे इन को आया हुआ सुन कापालिकों का झुण्ड साथ लिये चिता की राख देह भर में पोते त्रिशूल और मनुष्य की खोपरी हाथ में लिये मदपान से लाल नेत्र क्रकच नाम का कापालिक बड़े अभिमान पूर्वक आकर इनसे पूछा । भस्म तुम धारण किये हो सो तो उचित ही है किन्तु पवित्र नर कपाल त्याग मिट्टी का करवा हाथ में लिये क्यों डोलते फिरते हो ? मनुष्य का सिर और रुधिर में मिला हुआ मद्य श्रीभैरवनाथ को चढ़ाय भक्ति श्रद्धा से उनका पूजन क्यों नहीं करते ? इस तरह बकता हुआ क्रकच को धिक्कारते हुये सुधन्वा ने गुरू के पास से हटा दिया । तब यह मूर्ख क्रोध से भौं चढ़ाय त्रिशूल तान बोला जो मैं इस त्रिशूल से तुम सबों का सिर काट भैरव का पूजन न कर सका तो मैं क्रकच कैसा । अपनी सेना समेत सहसा आ टूटा । इन कापालिकों की सेना में कितनों को सुधन्वा ने युद्ध में मार गिराया कितनों को शंकर ने हुंकार ध्वनि से यमपुरी का पाहुना कर दिया । इस तरह अपनी समग्र सेना का संहार देख झुंझ-लाया हुआ क्रकच शङ्कर के समीप आय बोला । ऐ मूढ़ ! तू मेरे प्रभाव को नहीं जानता देख मैं क्या करता हूं । यह कह मनुष्य की खोपड़ी मद्य से भर आधा पी आधा पृथ्वी पर धर नेत्र मूंद भैरों का ध्यान करने लगा । तत्क्षण मनुष्य के सिर का माला पहिने जलते हुये अंगारे के समान त्रिशूल हाथ में लिये अट्टहास ध्वनि करते भैरवनाथ प्रगट हो क्रकच ही का सिर त्रिशूल से काट शङ्कर को बहुत सा आश्वासन दे अन्तर्ध्यान हो गये । इस तरह पर बामाचारी चार्वाक बौद्ध इत्यादि अनेक पाखण्ड मत वालों का सुधन्वा राजा के द्वारा संहार कराते पश्चिम समुद्र के तट पर द्वारिकापुरी में जा पधारे । यहां महा शैव नीलकण्ठ को परास्त कर अपना शिष्य बनाया और गुजरात देश भर में विजय पताका स्थापित किया । पञ्चरात्र के मत पर चलने वाले वैष्णव आये उन्हें भी जीत अद्वैत दीक्षा का अधिकारी किया । वहां से यात्रा कर उज्जैनी को गये तहां महाकाल का दर्शन और पूजन कर भट्टभास्कर के पास पद्मपाद को भेज कहलाया । या तो मेरे भाष्य को

स्वीकार करो नहीं तो हम से शास्त्रार्थ करो। यह भास्कर भेदवादी था जीव और ब्रह्म में भेद इसका सिद्धान्त था और मण्डन के समान इसे भी अपने पाण्डित्य का बड़ा अभिमान था। बाद में हार जाने पर उज्जैनी भर में इसकी चर्चा फैल गई और वहां के विद्वानों ने आय शंकर को सविनय प्रणाम कर इनकी सर्वज्ञता सबों ने स्वीकार किया। उपरान्त जैन-मतावलम्बी कई एक आये उन्हें भी बाद में इन्होंने निरस्त किया। प्रभाकर, न्याय भाष्य के वार्तिककार उदयन खण्डनखाद्य कर्ता श्रीहर्ष के पाण्डित्य का गर्व दूर कर उन्हें अपना अनुयायी बनाते कामरू देश में पहुंचे। तहां अभिनव गुप्त जिसने वेदान्तसूत्र के भाष्य का अर्थ शक्ति परत्व किया था बिना शास्त्रार्थ ही के लोक में अप्रतिष्ठा की डर से इन का शारीरक भाष्य स्वीकार कर इनका शिष्य हो गया। इसके उपरान्त कोशलदेश, मिथिलादेश, बङ्गदेश, उड़ैसा आदि देशों में घूमते रहे और जहां गये वहीं इनकी प्रतिष्ठा की गई। गौड़ देश में मुरारि मिश्र और धर्मगुप्त मिश्र को शास्त्रार्थ में जीत वहां अपना यश स्थापित किया। इस तरह सब देशों में अपना यश स्थापन करने से समस्त हिन्दुस्तान में अद्वैत मत चक्रवर्ती राज्य के समान निष्कण्टक हो गया। अनेक देशों में भ्रमण करने से जुदे २ देशों का जल वायु सेवन के विकार से शङ्कर को भगन्दर रोग हो गया। दूर २ देश के वैद्य आये किसी से रोग अच्छा न हो सका शङ्कर भी शरीर में ममता त्याग परलोक यात्रा के लिये सन्नद्ध हो गये थे। तब पद्मपाद प्रणवमन्त्र का जप गुरू की आयुष्य वृद्धि के संकल्प से करने लगे। शङ्कर दिग्विजय वाले ने लिखा है कि इन को भगन्दर रोग इस लिये हुआ कि अभिनव गुप्त जिसे इन्होंने परास्त किया था वह तांत्रिक और शाक्त था उसी ने कोई ऐसा मारण प्रयोग किया कि इन्हें भगन्दर हो गया प्रणव के जप से शङ्कर अच्छे हो गये अभिनव गुप्त मर गया। रोग मुक्त होने पर गौड़पाद इन से मिलने को आये। ये गौड़पाद वही हैं जिन के शिष्य गोविन्द-नाथ थे इस लिये गौड़पाद शङ्कर के दादा गुरू हुये। शङ्कर ने गौड़पाद को भक्ति श्रद्धापूर्वक यथोचित पूजा कर अपना भाष्य जिसमें गौड़पाद

की शारीरक सूत्रों पर कारिका का विषद अर्थ किया गया था तथा माण्डूक्य उपनिषद् का भाष्य और माण्डूक्य पर जो गौड़पाद की कारिका थी उसका भी भाष्य इन्हें दिखलाया। गौड़पाद यह सब देख बड़े प्रसन्न हुये और अनेक वरदान दे अपने स्थान को पधारे। उपरान्त यह काश्मीर को गये तहां शारदा नाम का मठ है जिसके चारो दिशा में चार फाटक लगे थे और वे फाटक सदा बन्द रहते थे जिस दिशा का मनुष्य सर्वज्ञ हो वही उस दिशा के फाटक को खोल भीतर जा सकता था। शङ्कर दक्षिण द्वार पर पहुंच भीतर जाने लगे तो अनेक विद्वान् हर एक विषय के आय उपस्थित हुये और इन्हें भीतर जाने से रोकने लगे उन सबों को वाद में हराय आप भीतर जाय मठ के मध्यभाग की वेदी पर सुशोभित हुये। सबों ने जयध्वनि के साथ इनकी सर्वज्ञता स्वीकार कर लिया। इस तरह पर ३२ वर्ष की अवस्था तक अपने योगबल और अद्वितीय अनुपम पाण्डित्य से बौद्ध और जैनियों के हांथ से भारत का उद्धारकर कैलाश को सिधार गये। शङ्कर किस समय हुये इस पर जुदे २ लोगों का जुदा २ मत है पर विक्रमार्क के छठवे शताब्द के अन्त में और सातवें शताब्द के प्रारम्भ में इनकी स्थिति संसार में अधिक प्रमाण के योग्य मालूम होती है। सिवाय शङ्कर दिग्विजय के कोई दूसरा ज़रिया हम को इनके जीवन के वृत्तान्त जानने का नहीं है दिग्विजय वाले ने जो कुछ लिखा है वह पुराणों का ढंगलै निरी कविता किया है और ग्रन्थकार माधवाचार्य को शास्त्र के प्रत्येक विषय में कहां तक गम्य था सो भी शङ्कर के जीवनचरित्र में उन्होंने प्रगट किया है। जो हो! शङ्कराचार्य हिन्दुस्तान के एक अनुपम रत्न हुये हैं और क्षतिग्रस्त हिन्दू-धर्म का बहुत कुछ उद्धार किया और ऐसे ढंग से किया कि सर्वसम्मत और सर्वमान्य हुये। अब इस समय ऐसे एक संशोधक की बहुत आवश्यकता है। स्वामी दयानन्द कुछ हुये थे किन्तु कई बातों में ऐसे चूके कि सर्वसम्मत न हो सके। यद्यपि दिग्विजयकार ने अपने ग्रन्थ में कई ठौर चक्राङ्कितों से शङ्कर के शास्त्रार्थ की चर्चा की है किन्तु रामानुजाचार्य और पूर्णप्रज्ञदर्शन के प्रवर्तक मध्व दोनों इनके उपरान्त हुये हैं। जिस

का खण्डन शङ्कर ने किया है। वैष्णवों की उस चक्राङ्कित संप्रदाय के प्रवर्तक बोधायन ऋषि और नारद पंचरात्र है उसी को रामानुज और मध्व ने पल्लवित किया है। दिग्विजव से आकर ग्रन्थ के पूर्ण पाण्डित्य को तो वही थहा सकता जो मीमांसा, न्याय, कणाद, पातञ्जल, वलिक, बौद्ध और जैनियों के सिद्धान्त से भी जानकार हो किन्तु शङ्कर के जीवनचरित्र में ऐतिहासिक भाग को संग्रह करने में मैंने कहीं से त्रुटि नही की। आशा है पढ़ने वालों को कुछ न कुछ इस से चित्तविनोद हो ही गा इति।

---

## ज़ैद और बकर की बात चीत।

ज़ै०—क्या तुम सोचे थे मैं हमेंशा अन्धा और ना समझ बना रहता और कयामत तक कभी न चेतता।

बकर—मैं तो यही चाहता था और ऐसे ही ढंग से चल रहा था। ऐसे चक्कर में तुम्हें छोड़ रक्खा था कि कभी तुम उस भंवर जाल के बाहर न होते।

ज़ै०—तो तुम ने मुझे इसी लिये लुंज पुञ्ज कर डाला और हम यहां तक सुस्त और काहिल हो गये कि एक पांव आगे बढ़ना भी हमारे लिये दुशवार था।

ब०—मैंने तवारीखों में यह पढ़ा कि तुम कई सौ वर्ष से गुलामी में पड़े हो और गुलाम रहना पसन्द करते हो तब तुम्हारी इस पसन्द का फ़ाइदा मैं क्यों न उठाता।

ज़ै०—तो क्या तुम खुदा की कुदरत और कुदरत के कानूनों को पलट दिया चाहते हो। नहीं जानते यह "प्रकृति परिवर्तन शील है" इस कुदरत में हमेशा अदल बदल हुआ करता है कभी एक ही तरह की नही रहीं।

ब०— अबतक जो रंग ढंग तुम्हारा था उससे मुझे यही मालूम हुआ कि तुम्हारे लिये कुदरत को भी लाचार हो अपना तर्ज़ बदलना पड़ा "चांद चलै सूरज चलै चलै जगत व्यौहार। अचल काहिली हिन्द की

रही सदा एकतार"। हाय! मुझ को ताज्जुब है कि तुम अब क्या से क्या हो गये। क्या कभी मुमकिन है कि सूरज पच्छिम में उगेगा और रात दिन हो जायगी?

ज़ै०—सच कहते हो यह रोशनी तो पच्छिम से ही हमें मिली; ज़रूर उसी ओर सूरज भी उगा तो क्या अचरज। नहीं जानते अघटित घटना पटीयान् परमेश्वर सर्वशक्तिमान् है वह असंभव को भी संभव कर देता है। यही एक उदाहरण देखो-कि जो हमेशा से बुज़दिल मशहूर थे, जिन की ढीली धोती से कभी विश्वास नहीं होता था कि इनमें बहादुरी आवेगी, वे इस समय बंगाली अपनी जाति की जाति को वीर बनाने की चेष्टा में लगे हैं और कुछ उनमें से जाने पर खेल रहे हैं। तो जान पड़ा कि ज़रूर यह कोई कुदरत का खेल है।

ब०—क्या तुम चाहते हो मैं न रहूं।

ज़ै०—नहीं २ तुम हमारे सिरताज हो कर रहो। कामधेनु जिसपर हमारा और तुम्हारा दोनों का दावा है और हमारा तो हाड़ मास सब उसी कामधेनु का है अन्त में उसी में मिल भी जायगा। तुम तो आये तरह तरह की हिकमत लगाय जहां तक दुहते बना उसे दुहा चंपत हुए। हम मुह ताकते ही रह जाते हैं तुम सर्वस्व निगल बैठते हो। सार पदार्थ खींच लेने पर काफी छिलका और भूसी तक नहीं छोड़ते कि हम उसी से अपना निर्वाह करते। हां जी रहे हैं सही पर नकटा जिया बुरे हवाल की भांत सर्वथा निर्जीव। और शायद यही तुम चाहते भी हो कि इन्में बल पौरूष न बढ़ने पावे नहीं तो ये हमारी बराबरी का दावा करने लगेंगे। पर अब सो होना नहीं है।

ब०—छिः पांव की धूल सिर पर चढ़ने का मन कर रही है। अच्छा तो अब हम जाते हैं लार्ड मिंटो से कहेंगे कि डिटेकटिबों का नम्बर बढ़ा दें, ठौर २ प्यूनिटिव पुलिस कायम करें और भी जो कुछ हमसे बन पड़े। सब कर गुज़रैंगे जिसमें तुम और लुंज पुंज बन बैठो।

जै०—अच्छा तो हम भी चिताये देते हैं तुम मन आवे सो कर डालो पर तुम्हारी इन चालों से हमारा यह दांव पेंच रुकने वाला नहीं।

माली जो उस बीज से उगे पौधों को सम्हाल सकें जन्म ले, उसकी रक्षा के लिये उद्यत हो गये। पर यह माली सामान्य माली नहीं है। स्वामी रामतीर्थ ने कहा है। "जिसको दुनिया का नाज़नखरा नहीं हिला सका वह मनुष्य अवश्य सारे संसार को हिला देगा"। ये माली उसी तरह के निकले और तन मन से भारत को गुलिस्तां बनाने में लग पड़े। अब रही खाद की कमी। सो जैसा इस समय राजनैतिक जोश उभड़ रहा है उससे बोध होता है कि लोग अपनी जान तक को उस खाद में देने को बल्कि खुद खाद हो जाने को मुस्तैद हो रहे हैं। सच है "ना हमस्मीतिसाहसम्" हम नहीं हैं ऐसा समझ लेने वाला कौन चाहे तौन साहस का काम कर डाल सकता है। और इसी की हमारे देश में बड़ी कमी क्या सर्वथा अभाव रहा है। पुरानी बासना के लोगों से यह उम्मीद करना कि ये देश के काम में अपने को खाद बना डालेंगे व्यर्थ है। खाद बनने की आशा उन नये केड़ों से अलबत्ता की जा सकी है जो स्कूल और कालेजों में अभी शिक्षा पा रहे हैं। भारत के भावी कल्याण सूचक चिन्ह प्रगट होने लगे हैं। देश की सेवा के लिये स्वयं सेवकों के दल बनने लगे हैं। इन स्वयं सेवकों का समूह इन देश उद्धारका बड़ा अच्छा द्वार है। देश सेवा ही को जिन्होंने मुख्य धर्म मान रक्खा है और इनकी तादाद दिनों दिन बढ़ रही है। जल्द वह समय हम देखेंगे कि स्वयं सेवक बड़े २ शहरों में क्या एक २ छोटे ग्राम में भी उपज खड़े होंगे। पराधीन जाति को स्वच्छन्दता के योग्य बनाने के ये बहुत बड़े शुभ लक्षण हैं।

आर० बी० शुक्ल

---

# "बम्" क्या है ?

( लावनी )

( १ )

कुछ डरो न इससे केवल बुद्धि भरम् है
सोंचो यह क्या है जो कहलाता "बम्" है ।
यह नहीं "स्वदेशी आन्दोलन्" का फल है ।
नहीं "वायकाट" "अथवा" "स्वराज्य" की कल है ॥
नहि भारत बासी नाम भी इस्का जाने ।
नहिं क्रिया चलाने की इस्की पहचाने ॥
नहि कभी स्वप्न में देखो पत्त गरम् है ॥ सोंचो ॥

( २ )

नहि समाचार कोई लेक्चर बाज़ों से ।
है हुआ प्रगट अथवा स्वदेश काजों से ।
नहिं है " बन्दे मातरम्" मंत्र का कर्तब ।
यह दोष लगाना निश्चय मिथ्या है सब ॥
नहि हिंद वासियों का यह कभी करम् है ॥ सोंचौ ॥

( ३ )

"यह" है एंग्लोइ-रिडयन पत्र की माया ।
जिनने अंगरेज़ों को मिथ्या भड़काया ॥
जो हुआ ज़ुल्म निर्दोषी हिन्दुन ऊपर ।
तिससे यह निकला इस स्वरूप में बनकर ॥
निश्चय जानों "यह" दिलका पका वरम् है ॥ सोंचो ॥

( ४ )

है केवल इंग्लिश शिक्षा की बलिहारी ।
ये हैं यूरुप देशों की रीतें सारी ॥
"यह" हिन्दवासियों के दुःखों का सर है ॥
बैरियों का उनके उगला हुआ ज़हर है ॥
सम्पादक मंडल वा सबी कहैं अधरम है ॥ सोंचो ॥

( ५ )

अब खूब सोंच कर इसको ज़रा विचारो ।
औ इतिहासों को पढ़ कर मर्म निकारो ॥
नहि कहीं बहक कर अब जल्दी करदेना ।
फिर भी पीछे का ध्यान हृदय धर लेना ॥
बहकाने वाला होता महा अधम है ॥ सोंचो ॥

( ६ )

जब जब नृप अत्याचार महा करते हैं ।
औ प्रजा दुखी चिल्लाते ही डरते हैं ॥
नहि दीनों की जब कहीं सुनाई होती ।
तब इतिहासों की बात सत्य ही होती
"माधव" कहता, यह किसका बुरा करम है ? ॥
सोंचो यह क्या है जो कहलाता बम् है ॥

---

## मौखिक राजभक्ति ।

गवर्नमेंट के कर्मचारी जो ऐसी चतुराई से हमारा शासन कर रहे हैं इन मौखिक राजभक्तों को न जानते हों सो नहीं है । कर्मचारी गण खूब समझे हुये हैं कि ऐसे लोगों के कथन का क्या गौरव है । हाल में यहां के कई एक ताल्लुकेदार और कतिपय महाजनों ने बम् के गोले पर शोक प्रकाश करने की एक मीटिंग मेओहाल मे की थी पढ़े लिखे लोग तथा वकील वर्ग इसमें शामिल न थे । इस लोगों का छिद्र देखने वाला दिली दुश्मन पायोनियर ने इसे छाप भी दिया है । जो स्पीच इस्मे पढ़ी गई वह ऐसी भद्दी थी कि शिक्षित मण्डली कभी इसपर सहमत नहीं हो सकती । इसमें एक रिज़ोल्यूशन अवैतनिक डिटेक्टिव बनाने के अभिप्राय का भी है । सरकार हम लोगों का कहा मानती और प्रजा को उनका हक्क देने की प्रार्थना का खयाल करती तो कभी ऐसे उपद्रव न होते । तब मौखिक राजभक्ति के जोश में आकर इस अवैतनिक डिटेक्टिव बनने की क्या ज़रूरत थी । अवैतनिक डिटेक्टिव के काम का दम भरने वालों से सरकार के अधिक शुभेच्छुक

हम उन्ही को कहेंगे जो मुल्की इन्तिज़ामो में सरकार को सुधार सुझाने वाले हैं। इतने कम लोगों की पबलिक मीटिंग आजतक मेओहाल में कभी नहीं हुई इससे सिद्ध हुआ कि यह मीटिंग निरे खुशामदी लोगों की थी ऐसों ही की करतूत से यू० पी० और प्रान्तों के मुकाबिल पीछे हटा हुआ है और इसके उभड़ने की कम आशा है।

---

## बम् से हल चल।

इस समय हिन्दुस्थान में बम के कारण जो हल चल मची है उस की ओर केवल हिन्दुस्थान ही नहीं कुल दुनियां की आखें लगी हैं। चाहे दुनियां के और देश इस की कड़ी आंच सह चुके हों किन्तु हिन्दुस्थान के लिये यह नई आंच है। इसका कारण ऐङ्गलो इन्डियन पत्र स्वदेशी आन्दोलन बतलाते हैं। इसको ज़ोर के साथ दबाने का सर्कार को वे परामर्श देते हैं और अनेक कानून बनवाना चाहते हैं। उनकी लाल लाल आंखें गरम दल तथा उसके अगुओं पर विशेष है। यदि वे लोग इस की तह तक पहुंच कर इसकी जड़ का अनुसन्धान करते तो उनको पता लग जाता कि इसका एक मात्र कारण एक देश व्यापी असन्तोष है। यह एक साधारण नियम है जब किसी उन्नत जाति के बुरे दिन आते हैं तब उसको नई जातियां नये तेज और उत्साह से उत्साहित हो कर अपने बश में कर लेती है और फिर धीरे २ अभिमान से अन्धे हो कर वे जेता अपने ज्ञान चक्षु खो देते हैं। उनको तुच्छ, नीच, गुलाम, समझते हैं। बात बात में दबा कर उनको अनेकानेक कष्ट देते हैं। इस तरह दबते २ और कष्ट पाते उस बुझी हुई गुलाम जाति को तकलीफ़ और असन्तोष की आग सोने के समान गलाती है और उसकी सब मैल छूट कर वह साफ़ और चमकदार बन जाती है। उसमें नये उत्साह की चमक आ जाती है देश भक्ति की प्रभा फैलती है और उसमें कुछ ऐसे बीर उत्पन्न हो जाते हैं जिनको देश के सामने प्राण क्या स्वर्ग भी तृणवत् है।

केवल अङ्गरेज़ी पत्र नहीं कुछ देशी पत्रों की राय भी उपरोक्त पत्रों से मिलती जुलती है। उनकी राय में ऐसों को देश भक्त कहना

महा अन्याय है। लेकिन हम न्याय अन्याय कुछ जानते ही नहीं और न्याय है भी नहीं। जब निर्बल का मुकाबिला बलवान् से पड़ता है तो बलवान की इच्छा ही न्याय समझी जाती है। जब युद्ध में हार कर एक प्रतिद्वंद्वी कमज़ोर सिद्ध हो जाता है तो नेता की इच्छा ही उचित सन्धि कही जाती है। जब किसी अङ्गरेज़ और हिन्दुस्थानी का मुक़द्दमा फ़ौजदारी अदालत में होता है तो जिस बात में अङ्गरेज़ का फ़ायदा है प्रायः वही न्याय होता है। देशी पत्रों में प्रयाग के प्रधान माडरेट मुखपत्र अभ्युदय ने जो विचित्र सम्मति इस पर प्रगट किया है ज़रा उसको देखिये— "उग्र उपायें को काम में लाना देश के लिये अच्छा नहीं है। इस से शान्ति प्रिय लोगों को कष्ट होता है इससे देश की उन्नति नहीं सक्ती, यह आर्य प्रकृति के विरुद्ध है"॥

उग्र उपायें को काम में लाना देश के लिये अच्छा।और नहीं है यह बहुत ठीक है। शान्ति प्रिय लोगों को इससे कष्ट होता है यह भी ठीक है। यह "आर्य प्रकृति के विरुद्ध है।" किन्तु धर्म के साथ वीरता आर्य लोगों के विरुद्ध नहीं है। धर्म युक्त वीरता ही जातियों को महान् बनाती है। यही सभ्यता का मूल है। और यही वीर आर्य लोगों की परम प्रिय वस्तु है॥ हम अपने प्रधान धर्म ग्रंथ वेद से लेकर उपनिषद् और पुराणों पर दृष्टिपात करते हैं तो आर्यों की वीर प्रकृति का खूब परिचय मिलता है। भारत का गौरवसूर्य उसी समयसे अस्त है जब से आर्यगणों ने शान्त प्रकृति धारण किया। यूनानियों का गौरव तभी तक था जब तक उनमें वीरता थी। जब से रूमियों ने उनको परास्त किया चाहे वे लोग सभ्यता में काव्यकला में बढ़ गये हों लेकिन वह इज्ज़त कहां। बम् के संबन्ध में जो लोग सर्कार को कड़ाई करने और इनको दबाने की सलाह देते हैं वे गवर्मेंट के शत्रु हैं। यह बात इतिहासों से सिद्ध है ऐसी बातें कड़ाई से क्या दबाई जा सकती हैं? जब तक ऐङ्गलो इन्डियन पत्र कड़े लेखों से भेद भाव बढ़ाते जांयगे; सर्कार प्रजा की पुकारों को उपेक्षा की दृष्टि से देखती जायगी; जिन अधिकारों के वे योग्य हैं उनके वे अयोग्य साबित किये जांयगे; सब से बढ़कर जब तक लोग पेट की ज्वाला से दग्ध होकर जीवन त्याग करते जांयगे, हलचल भी बढ़ता ही जायगी। A. B. C.

R. E. G. D. No. 308